Con. 3. VIII-23.49
320

अंक 8
संख्या 23

बृहस्पतिवार,
16 जून
सन् 1949 ई.

# भारतीय संविधान सभा

## के

## वाद-विवाद

## की

## सरकारी रिपोर्ट

**( हिन्दी संस्करण )**

---

**विषय-सूची**

पृष्ठ

प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर ...1387
संविधान का प्रारूप ...1387-1448
[अनुच्छेद 289 से 301 पर विचार]
सदन का स्थगन ...1448-1450

# भारतीय संविधान सभा

**बृहस्पतिवार, 16 जून सन् 1949 ई.**

*भारतीय संविधान सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः आठ बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।*

---

## प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्नलिखित सदस्यों ने प्रतिज्ञा ग्रहण की और रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये:

(1) शेख मोहम्मद अब्दुल्ला
(2) मिर्जा मोहम्मद अफजल बेग
(3) मौलाना मोहम्मद सईद मसूदी
(4) श्री मोतीराम बागदा

[कश्मीर]

***अध्यक्ष:** मुझे विश्वास है कि शेख मोहम्मद अब्दुल्ला और तीन अन्य सदस्यों का सप्रेम स्वागत करने में आप मेरा साथ देंगे, जिन्होंने सभा में आज प्रवेश किया है और जो आज प्रथम बार अपना स्थान ग्रहण कर रहे हैं। अब सदन में उन राज्यों के पूरे प्रतिनिधि आ चुके हैं, जो भारत में प्रविष्ट हुए हैं।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): भोपाल और हैदराबाद?

***अध्यक्ष:** मुझे विश्वास है कि उनकी उपस्थिति से संविधान के निर्माण में बहुत सहायता मिलेगी, जो समूचे देश पर लागू करने के उद्देश्य से बन रहा है और मुझे विश्वास है कि उसे समस्त अंगभूत सदस्यों का पूर्ण समर्थन प्राप्त होगा। उनके आने में विलम्ब हो गया, किन्तु इसमें उनका दोष नहीं है और मैं समझता हूं कि हमारा भी दोष नहीं है। परिस्थितियां ऐसी रही हैं कि उन्हें विलम्ब हो गया और मुझे विश्वास है कि वे अब भी हमारे संविधान में अत्यंत उपयोगी अंशदान कर सकेंगे।

---

## संविधान का प्रारूप—( *जारी* )

## अनुच्छेद 289

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 289 पर वाद-विवाद जारी रखेंगे। श्री पातस्कर!

***श्री एच.वी. पातस्कर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मैं इस प्रश्न पर सांविधानिक दृष्टिकोण से विचार करने जा रहा हूं। जहां तक मुझे पता है, ऐसा कोई संविधान नहीं है, जहां निर्वाचन और उसके विस्तृत विवरण के सम्बन्ध में ऐसे व्याख्यापूर्ण उपबन्ध हों। यहां तक कि कनाडा निर्वाचन अधिनियम, जिसके आधार पर विद्यमान संशोधन और आगे

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री एच.वी. पातस्कर]

आने वाले संशोधनों की रचना की गई है, कनाडा विधानमंडल का ही अधिनियम है, और जैसा कि मैंने कल कहा था, वह भी कनाडा की अधिराज्य संसद पर लागू है, जहां तक उपलब्ध अभिलेखों से मैं पता लगा पाया हूं। पर्याप्त प्रयत्नों के बावजूद भी मैं उसकी कोई प्रति विधानमंडल के पुस्तकालय या इस पुस्तकालय में प्राप्त नहीं कर सका हू। फिर भी उपलब्ध विलेखों से मुझे यह विश्वास हो गया है। मेरा तो कहना यह है कि क्या यह वास्तव में अपेक्षित अथवा अभीष्ट है कि संविधान में निर्वाचन की प्रणाली के विषय में, निर्वाचन-आयोग आदि के विषय में ये सब विस्तृत बातें रखी ही जायें। जैसा कि हमें पता लगा है, शायद इसका कुछ औचित्य इसलिये हो कि मस्विदा समिति को पता लगा हो कि इस समय निर्वाचनों की तैयारी का काम चल रहा है और वे इसके लिये कुछ उपबन्ध बनवाना चाहते हैं, पर सर्वोत्तम उपचार यह नहीं है कि उन्हें यहां संविधान में समाविष्ट किया जाये, वरन् यह है कि संविधान-सभा की विधायिनी शाखा से कोई अधिनियम पारित करवा दिया जाये। मुझे बताया गया है कि वह अगले सितम्बर में समवेत होगी और इसमें कोई बात नहीं होती कि कनाडा-निर्वाचन अधिनियम के समान एक अधिनियम केन्द्रीय विधानमंडल से पारित करा दिया जाता। यह वांछनीय नहीं है कि इसका उपबन्ध संविधान में ही किया जाये, जो कि सदा के लिये बन रहा है। हम नहीं जानते कि दस-बीस वर्ष पश्चात् क्या स्थिति होगी। देश के कुछ भागों में जो कुछ हो रहा है, उसे देखते हुए यह अभीष्ट नहीं है कि हमारे संविधान में ये सब विस्तृत बातें लिखी जायें। अत: मैं अब भी यह अनुरोध करता हूं—शायद इसका अधिक प्रभाव न पड़े—कि ये सब बातें और अनुवर्ती उपबंध, जो कि पेश किये जाने वाले हैं, एक अधिनियम में रखे जा सकते हैं जो कि केन्द्रीय विधान मंडल पारित करे। अब हमारा अपना विधानमंडल है और हम उसे पारित कर सकते हैं।

श्रीमान्, मैं नहीं समझता कि ऐसे मामलों में यह वांछनीय है कि हम पहले के निर्णयों को समय-समय पर बदलें, जब तक कि कोई विशेष कारण न हो कि उन निर्णयों को कुछ मास पश्चात् उलटा जाये। जैसा कि मैं कह चुका हूं, जहां तक कि मैं देख सकता हूं, इस प्रयोजन के लिये अनुच्छेद 289(2) पर्याप्त है। अनुच्छेद 289(2) के अधीन भी हम कुछ सरकारी अधिकारियों को केवल निर्वाचन आयुक्त ही नियुक्त नहीं कर सकते, प्रत्युत उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों जैसे व्यक्तियों को भी नियुक्त कर सकते हैं; हम उन्हें स्थायी भी बना सकते हैं; हम उन्हें इतना ही स्वतंत्र बना सकते हैं जैसा कि हम केन्द्रीय आयोग को बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। भारत शासन अधिनियम 1935 के अन्तर्गत भी धारा 201 में निर्वाचन सम्बन्धी उपबन्ध थे, यद्यपि उसमें इस हद तक संघीय ढांचा नहीं रखा गया था और एकात्मक ढांचा ही था। उसमें यह उल्लिखित था ''यहां आगे उल्लिखित मामलों के विषय में जहां तक इस अधिनियम द्वारा उपबन्ध नहीं किया जाता, वहां तक सपरिषद् सम्राट् समय-समय पर इन मामलों या इनमें से किसी के विषय में उपबन्ध बना सकता है—इस अधिनियम के अन्तर्गत निर्वाचन करने तथा उनमें मतदान के विषय में'' तब भी यह काम कार्यरूप में प्रान्तीय सरकारों पर छोड़ दिया गया था। मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि हम संविधान में ही इन सब बातों के लिये उपबन्ध क्यों रखें और जहां तक मैं पता लगा सका हूं, किसी अन्य संविधान में इस प्रकार का उपबन्ध नहीं है।

अत: मुझे एक-दो ठोस सुझाव देने हैं। हम अनुच्छेद 289 को उसी रूप में रहने दे सकते हैं। उसके अनुपूरण के लिये हम केन्द्रीय विधानमंडल का एक अधिनियम बना सकते हैं, जिसमें उन सब बातों का उपबन्ध हो जिन्हें इस समय संविधान में रखने का प्रयत्न किया जा रहा है, कि इन प्रादेशिक और अन्य आयुक्तों का क्या ओहदा होगा जब कि वे नियुक्त किये जायें, क्या वे उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के समान स्वतंत्र व्यक्ति होंगे, उन्हें कैसे हटाया जाये, आदि। मैं मानता हूं कि वे कार्यपालिका के प्रभाव से स्वतंत्र होने चाहिये। हम यह सब काम आसानी से विद्यमान केन्द्रीय विधानमंडल पर तो छोड़ ही सकते हैं।

अन्तत: मुझे अनुरोध करना है कि अभी भी समय है कि हम वास्तव में गम्भीरता से विचार करें कि क्या अनुच्छेद 289 (2) पर्याप्त नहीं है। जैसा कि मैं कह चुका हूं, मेरे विचार में इस संशोधन से प्रान्तीय स्वतंत्रता का अन्तिम चिह्न ही नहीं मिट जायेगा, वरन् इससे प्रकट हो जायेगा कि हमें प्रांतों के लोगों पर राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत राज्यपाल से लेकर छोटे से छोटे स्थानीय प्राधिकारी पर अविश्वास है। मैं नहीं समझता कि इस प्रकार के दृष्टिकोण का कोई औचित्य है। अत: मेरा सुझाव है कि हमें इन सब बातों को संविधान में रखने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, जहां तक निर्वाचनों का सम्बन्ध है, मैं संविधान में इस अनुच्छेद को बहुत महत्त्वपूर्ण समझता हूं। मैं नहीं समझता कि इस विषय में इस सदन में या बाहर दो मत हैं कि निर्वाचन न्यायपूर्ण, शुद्ध, ईमानदारी से और निष्पक्षता से होने चाहिये। यदि यह अभिप्राय है तो यह बात तभी पूरी हो सकती है जब कि इस अनुच्छेद में उपबन्धित निष्पक्ष अभिकरण बने। हम चाहते हैं कि निर्वाचन संदेह से परे हों। जो भी व्यवस्था की जाये वह सर्वथा स्वतंत्र होनी चाहिये और कार्यपालिका या किसी भी शक्ति के प्रभाव से भी स्वतंत्र होनी चाहिये। अत: श्रीमान्, मैं हृदय से इस अनुच्छेद का स्वागत करता हूं जो कि मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किया गया है।

श्रीमान्, मैं अनुभव करता हूं कि जहां तक निर्वाचनों में पूर्णता लाने का सवाल है, यह अनुच्छेद भी काफी नहीं है। अभी मैं आपको यह सिद्ध करके बताता हूं कि इस अनुच्छेद में भी कुछ त्रुटि है। उसके अतिरिक्त इस अनुच्छेद में प्रत्येक प्रयत्न किया गया है कि हम जो उद्देश्य पूरा करना चाहते हैं यह पूरा हो जाये।

यह कहा गया है कि आप यह कार्य एक विशेष आयोग को सौंप कर प्रान्तों के अधिकारों को कम क्यों करना चाहते हैं? अब, श्रीमान्, मैं यह समझ नहीं पाता कि प्रान्तों के अधिकारों को कम करने का प्रश्न ही कैसे पैदा होता है। यह आयोग केवल प्रान्तों के विधानमंडलों के ही निर्वाचन नहीं करायेगा, अपितु केन्द्रीय विधानमंडल के भी निर्वाचन करायेगा। यदि वह प्रांतों के अधिकारों का अपहरण करेगा, तो वह केन्द्र के अधिकारों का भी अपहरण करेगा और इसलिये यह कहना अनुचित है कि यह प्रान्तों के अधिकारों का अपहरण करेगा।

इस अनुच्छेद के अन्तर्गत निर्वाचन के प्रयोजनों के लिये व्यवस्था की गई है। उसे प्रशासन के प्रयोजनों के लिये स्वाधीन तो बना दिया गया है, पर खंड (5) में कहा गया

[श्री आर.के. सिधवा]

है कि निर्वाचन के लिये आवश्यक कर्मीवृन्द प्रान्तों से बुलाया जा सकता है। यही एक त्रुटि है जिससे कि, जैसा मैने कहा था, यह योजना अपूर्ण रह जाती है। यदि आप इस योजना को पूर्ण बनाना चाहते हैं तो आपको प्रान्तों से कर्मीवृन्द नहीं मंगाने चाहिये। यद्यपि निर्वाचन की कालावधि में वह कर्मीवृन्द आयोग के नियंत्रण में होगा, तदापि यह बात केवल अस्थायी काल के लिये होगी। वे स्थायी व्यक्ति होंगे जो कि कार्यपालिका के प्रति उत्तरदायी होंगे और यदि कार्यपालिका शरारत करना चाहे, तो वह उस कर्मीवृन्द को गुप्त अनुदेश दे सकती है कि वे उनके अनुसार चलें। कर्मीवृन्द यह अनुभव कर सकता है कि उनको स्थायी कार्य कार्यपालिका से है, आयोग के साथ तो थोड़े ही दिनों का कार्य है और इसलिये वे स्थायी अधिकारियों के कथनानुसार ही चलेंगे। अत: श्रीमान्, मैं इसे अच्छा समझता कि समूचा कर्मीवृन्द बाहर से ही भर्ती किया जाये, किन्तु मैंने स्वयं यह सोचा कि उसका क्या प्रभाव होगा। इसके लिये तो लोगों की एक सेना चाहिये। जिन्होंने निर्वाचन होते देखे हैं और जिन्हें इसमें रुचि है, वे जानते हैं कि समूचे देश के निर्वाचन करवाने के लिये बहुत लोगों की—लोगों की एक सेना की आवश्यकता पड़ेगी। यह बहुत खर्चीली बात होगी; अत: यद्यपि उस हद तक यह अपूर्ण है पर मैं इसे इसलिये स्वीकार करता हूं कि यह पूर्णता के सन्निकट है। यदि हमें नया कर्मीवृन्द रखना हो, तो खर्च बहुत होगा और वह नया अप्रशिक्षित कर्मीवृन्द होगा और शायद प्रशासन में वह इतना प्रभावी न हो जितनी कि हम उससे आशा करते हैं। दूसरा उपबन्ध आयोग के स्थायित्व के विषय में है। यह कहा गया है कि स्थायी आयोग रख कर इतना व्यय क्यों करते हैं। मुझे कराची नगर-निगम के निर्वाचन का कुछ अनुभव है—मेयर के रूप में भी और स्थायी समिति के अध्यक्ष के रूप में भी। कराची नगरपालिका अधिनियम में एक उपबन्ध है कि एक स्थायी निर्वाचन कर्मीवृन्द होगा और उसके अनुसार दस वर्षों से हमने यह स्थायी रूप में रख दिया है और निर्वाचन उचित और पूर्ण होते हैं, यद्यपि कराची में बहुत कम मतदाता है, पर इस तरीके से मत देना पूर्णत: बंद हो गया है। मुझे विश्वास है कि हम जो स्थायी आयोग स्थापित करने जा रहे हैं, उससे ये सब त्रुटियां दूर हो जायेंगी और यह कहना अशुद्ध होगा कि साधारण निर्वाचन समाप्त हो जाने के पश्चात् इस आयोग के पास कोई कार्य नहीं रहेगा। अब सारे प्रान्तों में लगभग 4,000 सदस्य होंगे और उप-चुनाव भी होंगे। नि:संदेह प्रति मास दो-तीन निर्वाचन होंगे—कुछ सदस्यों की मृत्यु हो सकती है, कुछ उच्च पदों पर नियुक्त हो जायेंगे—कुछ इधर उधर चले जायेंगे। संविधान-सभा में कुछ काल में ही कई उप-चुनाव हो चुके हैं, यद्यपि हमारा उससे कोई सम्बन्ध नहीं है, किन्तु जहां से वे लोग आये हैं वहां बहुत से निर्वाचन हो चुके हैं। अत: आवश्यकता और निष्पक्षता के अतिरिक्त भी इस आयोग के पास पर्याप्त कार्य होगा। इसके अतिरिक्त यदि आयोग स्थायी हुआ तो वह क्या करेगा? समय-समय पर वह निर्वाचन-नामावलियों का परीक्षण करेगा और प्रान्तों के आंकड़ों को देख कर उन लोगों के नाम हटा देगा जो कि मर चुके हैं तथा यथासंभव नामावलियों को समयानुकूल बनायेगा। निर्वाचन-नामावली का उद्देश्य शुद्ध निर्वाचन करवाना है, पर मैं जानता हूं कि इस समय उनमें से 50 प्रतिशत त्रुटिपूर्ण होती हैं। कुछ लोग मर चुके होते हैं, पर कोई दल विशेष जानबूझ कर उनके नाम रख देता है, क्योंकि वह

अपनी इच्छानुसार नाम रख कर निर्वाचन लड़ना चाहता है; मैंने नगरों के रहने वाले ऐसे व्यक्तियों का नाम सुना है जो कि कार्यपालिका से सम्पर्क बना कर प्रभाव डालना चाहते हैं। मैं आपको अपने वैयक्तिक अनुभव से बता सकता हूं और मैं अनुभव करता हूं कि यदि हम पूरी तरह ठीक नामावली चाहते हैं—और निर्वाचनों में नामावली ही मुख्य वस्तु है—तो मुझे विश्वास है कि हमारे यहां स्वतंत्र आयोग होना चाहिये और यदि हम स्थायी आयोग स्थापित कर देंगे तो अवश्यमेव स्थायी नामावली भी बन जायेगी तथा अच्छी निर्वाचन नामावली बनेगी। इस विषय में मेरे मन में कोई संशय नहीं है, अतएव यद्यपि आप कहते हैं कि यह खर्चीली चीज है और आवश्यक नहीं है, पर मैं बलपूर्वक अपने अनुभव से कहता हूं कि मैंने जिस परिस्थिति का उल्लेख किया है, उसमें यह आयोग बहुत आवश्यक है।

अब हम न्यायाधिकरण के प्रश्न पर आते हैं, तो जो लोग निर्वाचन के लिये कोई आवेदन पत्र देते हैं उनके लिये अथवा निर्वाचन याचिकाओं के लिये न्यायाधिकरण आवश्यक है। मुझे भी न्यायाधिकरणों का कुछ अनुभव है। पहले भी राज्यपाल न्यायाधिकरण नियुक्त करते थे और वे कार्यपालिका के कहने पर, अपने कृपापात्रों के कहने पर न्यायाधिकरण नियुक्त करते थे और वे कभी भी निष्पक्षता से कार्य नहीं करते थे। अत: मेरा सुझाव है कि न्यायाधिकरण में ऊंचे न्यायालयों के न्यायाधीश होने चाहिये और उन्हें ही निर्वाचन सम्बन्धी याचिकायें जानी चाहिये। मैं इस बात के विरुद्ध हूं कि ऐसे मामले किसी न्यायाधिकरण को सौंप दिये जायें। इससे तो हमारा उद्देश्य ही व्यर्थ हो जायेगा, जिसके लिये हम प्रयत्नशील है—कि हमारे निर्वाचन न्याययुक्त और निष्पक्ष हों—इससे वही उद्देश्य अपूर्ण रह जायेगा, यदि न्यायाधिकरण में, जो कि नियुक्त किया जायेगा, कोई शरारत हो जाये। मैं कह सकता हूं कि इंग्लिस्तान में भी ब्रिटिश राष्ट्रमंडल की सांविधानिक विधि में यह उपबन्ध है कि यह कार्य ऊंचे न्यायालयों को सौंपा जाये। अत: मेरा सुझाव है, कि यद्यपि संविधान में कुछ उपबन्धित नहीं हो सकता, मैं यह नहीं चाहता कि ये सब बातें संविधान में ही भर दी जायें—पर जब निर्वाचन अधिनियम बनाया जायेगा—जिसमें बहुत सी बातें रखी जानी है, यथा गूढ़ शलाका पेटिका आदि—तब के लिये मैं डा. अम्बेडकर को सुझाव देता हूं कि वे इस बात का ध्यान रखें कि उसमें यह स्पष्ट कर दिया जाये कि न्यायाधिकरण की नियुक्ति राष्ट्रपति पर या किसी और पर न छोड़ी जाये—मैं नहीं चाहता कि पहले जो चालाकियां होती रही हैं वे आगे भी हों। इसके अतिरिक्त मैं अनुभव करता हूं कि ऐसे विवादों में केवल स्थायी ऊंची न्यायपालिका ही न्याय और निष्पक्षता से कार्य कर सकती है और वही जनता की विश्वासपात्र हो सकती है। जो सार्वजनिक लोगों या वकीलों में से नियुक्त होंगे वे चाहे सर्वोत्तम वकील हों पर वे अस्थायी लोग होंगे और उन पर प्रभाव पड़ सकता है। यदि अधिकरणों में उत्तरदायी स्थायी लोग नहीं होंगे तो मुझे विश्वास है कि वे प्रभावी नहीं होंगे। मेरे मित्र श्री पातस्कर चाहते थे कि संविधान में निर्वाचन की योजना क्यों भरी जाये, नियम बना दिये जायें; किन्तु मैं उन्हें निश्चय से कह सकता हूं कि यदि हम अपने संविधान में ऐसा अनुच्छेद नहीं रखेंगे तो शुद्ध निर्वाचन करने का हमारा समूचा अभिप्राय ही असफल रहेगा; अत: यह आवश्यक है कि यहां इसका उपबन्ध कर दिया जाये। मैं नहीं चाहता कि यह बात निर्वाचन अधिनियम में रखी जाये। मैं तो वास्तव में यह चाहता हूं कि कुछ अन्य उपबन्ध भी, जैसे कि गूढ़ शलाका पेटिका आदि का उपबन्ध है, इसी संविधान में रख दिये जायें, क्योंकि वे निर्वाचन के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भविष्य में सब कुछ निर्वाचनों पर निर्भर होगा,

[श्री आर.के. सिधवा]

अत: यदि हम इसे संविधान में न रख कर संसद पर छोड़ देंगे, तो इसमें बहुत जोखिम है। इन परिस्थितियों में मैं इस अनुच्छेद का पूरे हृदय से स्वागत करता हूं और इसका बलपूर्वक समर्थन करता हूं।

***श्री कुलधर चालिहा** (आसाम : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैंने डा. अम्बेडकर के तर्कों को बहुत ध्यान से सुना है, जो कि संविधान के रचियता है और जिनके उद्यम और परिश्रम से हम सब आश्चर्यचकित हैं। फिर भी उनकी युक्तियों से वह विश्वास उत्पन्न नहीं हुआ जो कि प्राय: उनसे होता है। उनका मुख्य उद्देश्य यह है कि कार्यपालिका के अलावा कोई निकाय होना चाहिये जो कि निर्वाचन करवाये—उन्होंने पहले यह युक्ति पेश की थी कि वे इसे मूलाधिकारों में रखवाना चाहते थे किन्तु जैसा कि उन्होंने कहा कि वे इसके लिये पृथक् अनुबंध चाहते थे, अत: निर्वाचकगण के हितों का रक्षण करने के लिये यह अनुच्छेद जोड़ा गया है—पर कार्यपालिका के अलावा वह निकाय कौन-सा है। मुख्य निर्वाचन आयुक्त को भी तो राष्ट्रपति ही चुनेगा और चाहे कुछ भी हो वह भी दल का व्यक्ति होगा और किसी दूसरे के समान वह भी पक्षपाती ही होगा, अत: यह युक्ति बहुत ठीक नहीं जंचती। दूसरी बात वे कहते हैं और स्वीकार करते हैं कि यह एक मूलभूत परिवर्तन है और मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि ऐसा मूलभूत परिवर्तन क्यों किया जाये। क्या वे हमें उदाहरण दे सके हैं कि प्रान्तों में निर्वाचन अधिकरणों में कितना भ्रष्टाचार और कुलपोषण होता है? प्रान्तों में राज्यपालों द्वारा नियुक्त निर्वाचन अधिकरणों द्वारा शक्ति के दुरुपयोग का कोई उदाहरण नहीं दिया गया है। फिर भी वे मूलभूत परिवर्तन चाहते हैं। हां, बड़े रोग के लिये बड़ा ही उपचार चाहिये, किन्तु डा. अम्बेडकर तो इन निर्वाचन अधिकरणों द्वारा शक्ति के दुरुपयोग या भ्रष्टाचार का एक भी उदाहरण नहीं दे सके हैं। इसके विपरीत हम जानते हैं कि सिंध में एक निर्वाचन अधिकरण को जांच के फलस्वरूप पीर इलाहीबक्स को उसी के दल वालों ने हटा दिया था, जिससे पता चलता है कि हमारे लोगों में निष्पक्ष रहने की योग्यता है। मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि यह मूलभूत परिवर्तन क्यों किया जाये।

तब यह कहा जाता है कि प्रान्तों में अल्पसंख्यक हैं जिन्हें रक्षण की आवश्यकता है। पर क्या हमें उनको गर्व से पृथक् रहने देना चाहिये और जनसाधारण के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाने के लिये रास्ता साफ नहीं करना चाहिये? ऐसा करके तो आप इन प्रान्तों के लिये बड़ी समस्यायें पैदा कर रहे होंगे। यह कहा जाता है कि वे जातीय रूप में और भाषा के सम्बन्ध में भिन्न हैं। पर आप उन अन्तरों को स्थायी बना देंगे या आपको उन्हें दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये? मेरा निवेदन है कि इस मूल परिवर्तन के लिये कोई औचित्य सिद्ध नहीं किया गया है। डाक्टर अम्बेडकर ने कनाडा के निर्वाचन अधिनियम 1920 के समान इसे पेश किया है। किन्तु वहां तो बहुत कम जनसंख्या है और हमारे यहां 34 करोड़ जनसंख्या है, अत: इस देश के लिये एक निर्वाचन आयोग शायद ही पर्याप्त हो। वे नहीं जान सकेंगे कि मद्रास में कोई क्या कर रहा है और आसाम में क्या कर रहा है। मेरा निवेदन है कि वह काम प्रान्तों से नहीं ले लेना चाहिये। यदि आपको प्रान्तों पर संदेह है और केन्द्र के लिये आप अधिक शक्ति रखना चाहते हैं, तो इसके परिणाम अवांछनीय

ही होंगे। यदि आप सर्वश्री पंत, खेर और शुक्ल तथा उनके अधीन काम करने वाले लोगों का विश्वास नहीं कर सकते तो आप जनतंत्र को मुश्किल से ही सफल बना पायेंगे। आप ऐसी बात कर रहे हैं जिसका विघटनशील प्रभाव होगा और अन्तर मिटने के स्थान पर बढ़ जायेंगे। यदि आप केन्द्र को अत्यधिक शक्ति दे देंगे तो प्रान्त आप अलग होने का प्रयत्न करेंगे। मद्रास में कोई व्यक्ति आसाम या बंगाल में रहने वाले किसी व्यक्ति की भावना को क्या समझ सकता है? आपका यह ख्याल प्रतीत होता है कि केन्द्र के लोग ही सर्वोत्तम गुणों से विभूषित है। पर प्रान्त आप पर यह दोषारोपण करते हैं कि आपने अत्यधिक शक्ति ग्रहण कर ली हैं और उन्हें केवल नगर-पालिकाओं के समान बना दिया है जिनमें कि कोई उपक्रमण शेष नहीं रहा। आप समझते हैं कि आप में प्रान्तों के लोगों से अधिक गुण हैं, पर मुझे पता है कि वहां बहुत से ऐसे लोग हैं जो आप से अच्छे हैं यदि आप अपने ही लोगों की ईमानदारी पर विश्वास नहीं कर सकते तो आप लोकतंत्र को कभी सफल नहीं बना सकते। आप सदा संदेह करते हैं और समझते हैं कि प्रान्त अल्पसंख्यकों के प्रति अन्याय करेंगे। किन्तु यदि उन्हें पृथक रखा जायेगा और सदा राष्ट्रपति के या केन्द्रीय कार्यपालिका के संरक्षण में रखा जायेगा, तो वे कभी अपने गुणों का विकास नहीं कर पायेंगे और इससे गड़बड़ तथा विप्लव को प्रोत्साहन मिलेगा। यह सुझाव दिया गया है कि अनुसूचित श्रेणी के लोगों को प्रान्तों की निष्पक्षता पर संदेह है। किन्तु वे अपने ही आदमी हैं और वे केन्द्र के लोगों के समान न्यायपूर्ण, निष्पक्ष तथा सच्चे हो सकते हैं। आपको यह क्यों सोचना चाहिये कि आपने ऐसे सद्गुणों का विकास कर लिया है जो किसी और में नहीं है? श्रीमान्, मैं यह नहीं समझ पाता कि इस उपबन्ध को संविधान में रखने का प्रयत्न क्यों किया जा रहा है।

श्रीमान्, राज्यपाल को केन्द्र नियुक्त करता है और वह निर्वाचक अधिकरण बनायेगा, जैसा कि पहले होता था। श्री सिधवा के कथन के बावजूद मैं यह कहता हूं कि इनमें से किसी अधिकरणों के विरुद्ध कोई पक्षपात का मामला सिद्ध नहीं हुआ है। एक मामले में जिसमें मुझे रुचि थी, मुझे पता है कि यद्यपि कांग्रेस सरकार की विरोधी थी, फिर भी अधिकरण ने कांग्रेस के पक्ष में निर्णय किया था, यद्यपि अम्यर्थी के विरोधी राय बहादुर और अन्य बड़े व्यक्ति थे। इससे पता लगता है कि वे निष्पक्ष रह सकते हैं। आप अपने ही लोगों को पक्षपाती, अन्यायी और बेईमान कह कर नीचा क्यों बताते हैं? यदि हम अपने ही लोगों पर विश्वास नहीं कर सकते तो हम स्वाधीनता के योग्य नहीं हैं। श्रीमान्, प्रान्तों के साथ अन्याय करने का प्रयत्न किया जा रहा है और उन पर व्यर्थ ही संदेह किया जाता है, इसलिये मैं इस सुझाव का विरोध करता हूं।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, संविधान के मस्विदे के अनुच्छेद 289 के स्थान पर मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर ने कल एक नया अनुच्छेद पेश किया है। यह अनुच्छेद एक महत्त्वपूर्ण मामले के विषय में है और संविधान के मस्विदे के तत्स्थानी अनुच्छेद से मूलत: भिन्न है। फिर भी वे इस संशोधन को पेश करके ही संतुष्ट हो गये और जरा भी यह स्पष्ट नहीं किया कि नया मसौदा क्यों रखा गया है। जब मैंने यह कहा कि सदन के प्रति यह न्याय नहीं है कि एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मामले के विषय में कोई अनुच्छेद सदन के समक्ष रखा जाये और उसके उपबंधों का पूरा स्पष्टीकरण न किया जाये तो उन्होंने सफाई पेश करने की आवश्यकता समझी। किन्तु

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

यह देख कर कि उसकी स्थिति बहुत विषम थी, वे असावधान होकर कहने लगे कि मैंने इसीलिये स्पष्टीकरण मांगा था कि मैंने संशोधन को पढ़ा नहीं था। यह स्पष्ट है कि उनके इन अनुत्तरदायी कथन से सदन संतुष्ट नहीं हुआ और इसलिये उन्हें पुराने मस्विदे और नये मस्विदे में अन्तर को स्पष्ट करने के लिये बाध्य होना पड़ा।

श्रीमान्, इस प्रश्न के सम्बन्ध में कई प्रश्न उठते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न सिद्धान्त का है। क्या यह ठीक है कि इस प्रकार के मामले में प्रान्तीय सरकारों को, जिन्हें कि पूर्ण उत्तरदायी शासन दिया जा रहा है, सब शक्ति से वंचित कर दिया जाये? मैं इस विषय पर अधिक नहीं बोलूंगा क्योंकि इसे मेरे माननीय मित्र श्री पातस्कर ने बहुत योग्यता और पूर्णतया से समझा दिया है। डा. अम्बेडकर ने नई प्रक्रिया के पक्ष में सफाई पेश की है, जिससे कि केन्द्रीय सरकार को निर्वाचन नामावलियों को तैयार करने और निर्वाचन करने के सम्बन्ध में सब मामलों के अधीक्षण, नियंत्रण तथा पथ-प्रदर्शन के लिये उत्तरदायी बना दिया गया है और यह इस आधार पर किया गया है कि मंत्रियों के अनुदेशों के अन्तर्गत जातीय, भाषा सम्बन्धी अथवा सांस्कृतिक अल्पसंख्यकों को मतदाताओं की सूचियों से अपवर्जित किया जा रहा है। मैं नहीं जानता कि उन्हें या भारत सरकार को प्राप्त होने वाली शिकायतों की कहां तक जांच की गई है और वे किस हद तक ठीक पाई गई हैं। मान लीजिये कि वे ठीक सिद्ध हुई हैं, तो सब को यह सोचना पड़ेगा कि यह विस्तृत संविधान क्यों बनाया जा रहा है। यदि उच्च से उच्च स्थिति पर आसीन व्यक्तियों से उनके कर्त्तव्यों के निर्वहन में साधारण ईमानदारी की आशा नहीं की जा सकती, तो उत्तरदायी शासन के आधार का भी अभाव है, और वास्तव में भविष्य अन्धकारमय है। मुझे ऐसे किसी संधानीय संविधान का पता नहीं है जिसमें कि केन्द्र पर यह भार डाला गया हो कि वह निर्वाचन नामावलियां तैयार करवायेगा और निर्वाचनों को न्यायपूर्वक करवायेगा, जिससे कि किसी अल्पसंख्यक पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े—हो सकता है कि ऐसे संविधान हो जिन में कि ऐसा उपबन्ध हो, पर मुझे उसका पता नहीं है। शायद हमारा ही एक संधानीय या अर्ध-संधानीय संविधान होगा, जिसमें कि प्रान्तों को निर्वाचन नामावलियों की तैयारी और सम्बद्ध मामलों के विषय में भाग लेने से अपवर्जित कर दिया जाये, सिवाय उस अवस्था के जब कि राष्ट्रपति द्वारा निर्वाचित निर्वाचन आयुक्तों को उनकी सहायता की आवश्यकता हो।

पर यदि यह भी मान लिया जाये कि प्रान्तीय सरकारों के हाथों से निर्वाचन का नियंत्रण ले लेना अपेक्षित है, तब भी हमें देखना है कि क्या नये मस्विदे में आवश्यक रक्षण-कवच है। प्रान्तों की राजनैतिक शक्ति को कम करना ठीक हो सकता है; पर क्या कोई ऐसी जोखिम नहीं है कि यदि इस अनुच्छेद को इसी प्रकार रहने दिया गया तो केन्द्रीय सरकार का राजनैतिक पक्षपात सब जगह प्रभावी हो जायेगा, जहां अन्यथा प्रान्तीय सरकारों का राजनैतिक पक्षपात प्रभावी होता? नये मस्विदे में सब कुछ राष्ट्रपति पर ही छोड़ दिया गया है; निर्वाचन आयोग की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा; वह मुख्य निर्वाचन आयुक्त को नियुक्त करेगा और यह निश्चित करेगा कि कितने निर्वाचन-आयुक्त नियुक्त किये जायें, निर्वाचन-आयुक्तों और प्रादेशिक आयुक्तों की, जो कि नियुक्त किये जायेंगे, सेवा की शर्तों और पदावधि को भी वही निश्चित करेगा। फिर यद्यपि यह उपबन्ध है कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त को केवल उसी प्रकार हटाया जायेगा, जिस प्रकार कि उच्चतम न्यायालय

के न्यायाधीश को हटाया जाता है पर निर्वाचन-आयुक्तों को हटाने की शक्ति राष्ट्रपति के हाथ में ही रहने दी गई है। वह जिस आयुक्त को चाहे, उसे ही मुख्य निर्वाचन-आयुक्त से परामर्श करके हटा सकता है। इस अनुच्छेद का खंड (4), जो इस विषय में है, इतना महत्त्वपूर्ण है कि मेरे विचार में यह वांछनीय है कि मैं इसे सदन में पढ़ दूं। इसमें लिखा है:

> ''निर्वाचन-आयुक्तों और प्रादेशिक आयुक्तों की सेवा की शर्तें और पदावधि ऐसी होंगी जैसी कि राष्ट्रपति नियम द्वारा निर्धारित करे:
>
> परन्तु मुख्य निर्वाचन आयुक्त अपने पद से वैसे कारणों और वैसी रीति के बिना न हटाया जायेगा, जैसे कारणों और रीति से उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश हटाया जा सकता है तथा मुख्य निर्वाचन आयुक्त की अपनी नियुक्ति के पश्चात् उसकी सेवा की शर्तों में उसको अलाभकारी कोई परिवर्तन न किया जायेगा:
>
> परन्तु यह और भी कि किसी अन्य निर्वाचन-आयुक्त या प्रादेशिक आयुक्त को मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सिफारिश के बिना पद से हटाया न जायेगा।''

मैं देखता हूं, श्रीमान्, कि मैंने यह कह कर गलती की थी कि अन्य निर्वाचन आयुक्तों तथा प्रादेशिक आयुक्तों को मुख्य निर्वाचन-आयुक्त से परामर्श करके हटाया जा सकता है। उन्हें केवल मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सिफारिश पर ही हटाया जा सकता है, यहां की बातें स्पष्ट हैं। पहली यह है कि केवल मुख्य निर्वाचन आयुक्त ही ऐसा व्यक्ति है, जो कार्यपालिका की नाराजगी का जरा भी भय न मान कर अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर सकता है और दूसरी बात यह है कि अन्य निर्वाचन आयुक्तों को हटाना एक ही व्यक्ति, अर्थात् मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सिफारिश पर ही निर्भर होगा। चाहे वह कितना भी उत्तरदायी क्यों न हो पर मुझे यह बहुत अवांछनीय दिखता है कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के समान उत्तरदायी व्यक्तियों का हटाना एक ही व्यक्ति के अभिप्राय पर निर्भर हो। श्रीमान्, हम इस बात के लिये आतुर हैं कि निर्वाचन नामावलियों की तैयारी और निर्वाचन करने का काम ऐसे व्यक्तियों पर छोड़ा जाये, जो कि राजनैतिक पक्षपात से स्वतंत्र हों और जिनकी निष्पक्षता पर सब परिस्थितियों में विश्वास किया जा सके। किन्तु, बहुत-सी राजनैतिक शक्ति राष्ट्रपति के हाथ में छोड़ कर हमने मुख्य निर्वाचन-आयुक्त तथा अन्य निर्वाचन-आयुक्तों और अफसरों की नियुक्ति में केन्द्रीय सरकार द्वारा राजनैतिक प्रभाव के प्रयोग की गुंजाइश छोड़ दी है। मुख्य निर्वाचन आयुक्त को प्रधानमंत्री की मंत्रणा पर नियुक्त करना होगा और यदि प्रधानमंत्री किसी दलीय व्यक्ति की नियुक्ति का सुझाव रखे तो राष्ट्रपति के पास प्रधानमंत्री के नामनिर्देशित व्यक्ति को स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई उपाय न रहेगा, चाहे वह सार्वजनिक कारणों से कितना भी अनुपयुक्त क्यों न हो। (*बाधा*)। किसी ने मुझे पूछा कि ऐसा क्यों होगा। क्योंकि केन्द्र में पूर्णत: उत्तरदायी सरकार होगी, अत: राष्ट्रपति से आशा नहीं की जा सकती कि वह जैसे चाहे स्वविवेक से कार्य करे। वह केवल मंत्रिमंडल की मंत्रणानुसार कार्य कर सकता है और जब सिफारिश सम्बन्धी मामलों में उसे प्रधानमंत्री की सिफारिशें प्राप्त हों तो वह इच्छा होने पर गणराज्य का प्रधान होने के नाते उन्हें स्वीकार करने से इंकार नहीं कर सकता। अत: श्रीमान्, मेरे विचार में डा. अम्बेडकर ने हमारे समक्ष

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

जो मस्विदा रखा है, उसमें कई परिवर्तनों की आवश्यकता है, जिससे कि निर्वाचन आयोग में वास्तव में निष्पक्ष व्यक्ति हों और जिससे कि निर्वाचन-आयुक्त अपने उत्तरदायी कर्त्तव्यों का निर्भय होकर पालन कर सकें।

मैंने जो त्रुटियां बताई हैं, उनके लिये मेरा उपचार तो यह है कि संसद को इन मामलों के लिये विधि द्वारा उपबन्ध बनाने का प्राधिकार होना चाहिये। फिर, श्रीमान्, इस अनुच्छेद में उन लोगों की अर्हताओं की चर्चा नहीं है जो कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त अथवा निर्वाचन आयुक्त नियुक्त होंगे और जैसा कि मैं कह चुका हूं, पदच्युत करने के विषय में निर्वाचन आयुक्तों की वही स्थिति नहीं होगी जो कि मुख्य निर्वाचन-आयुक्त की होगी। मेरा ख्याल है, श्रीमान्, कि मैंने सदन के समक्ष जो अभिप्राय रखा है वही किसी समय डा. अम्बेडकर का भी मत था। संशोधन सूची में एक संशोधन 103 है, जिसे डा. अम्बेडकर ने पेश नहीं किया है, पर उन्होंने उसकी सूचना दी थी। जिन माननीय सदस्यों ने यह संशोधन पढ़ा है, उन्होंने देखा होगा कि खंड (2) में यह उपबन्ध है कि ''आयोग के सदस्य को अपने पद से केवल उसी प्रकार और उन्हीं आधारों पर हटाया जा सकता है जिन पर कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जा सकता है, और आयोग के किसी सदस्य की सेवा की शर्ते उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसके अहित में परिवर्तित नहीं की जा सकती है'' अत: यह स्पष्ट हो जायेगा कि मैंने जो सुझाव दिया है, वह डा. अम्बेडकर के अधिक उत्तम विवेक के अनुरूप है, जिसे दुर्भाग्य से कार्यान्वित नहीं होने दिया गया।

मुझे पता है, श्रीमान्, कि कल डा. अम्बेडकर ने हमें बताया था कि स्थायी निर्वाचन-आयोगों को रखना अनावश्यक है और केवल इतना ही पर्याप्त है कि निर्वाचन-आयोगों को उसी समय नियुक्त किया जाये जब कि उन के लिये पर्याप्त कार्य हो। यदि ऐसा है तो स्पष्ट है कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाने की प्रक्रिया निर्वाचन आयुक्तों के लिये लागू नहीं की जा सकती। यह सच है, किन्तु फिर कोई कारण नहीं है कि सारे मामले को राष्ट्रपति के हाथों में ही छोड़ दिया जाये, और निर्वाचन आयुक्तों की सेवा की शर्ते और अवधि उसके द्वारा नियमानुसार निश्चित की जायें। ये भी संसद द्वारा बनाई गई विधि से निश्चित होनी चाहिये।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, हमें प्रादेशिक आयुक्तों की स्थिति पर विचार करना है, जोकि निर्वाचन-आयोग की सहायता करने के लिये प्रान्तों में नियुक्त किये जा सकते हैं, जिससे कि वह अपने कर्त्तव्यों का सच्चाई और कुशलता से पालन कर सके। यह स्पष्ट है कि ये व्यक्ति जब तक अपने पदों पर रहेंगे, तब तक वे उच्च उत्तरदायी कर्त्तव्यों का पालन करेंगे। यह मुख्यत: उन पर निर्भर रहेगा कि निर्वाचन नामावलियों की तैयारी से और निर्वाचनों सम्बन्धी मामलों से जनता का संतोष होता है या नहीं। डा. अम्बेडकर ने जो मस्विदा सदन के समक्ष पेश नहीं किया है, उसमें प्रादेशिक आयुक्तों और निर्वाचन अधिकारियों आदि के विषय में यह उपबन्ध था कि ऐसा कोई प्राधिकारी या अधिकारी राष्ट्रपति के आदेश के बिना किसी प्रकार हटाया नहीं जा सकता। जैसा कि मैंने बताया है, अब एक परिवर्तन कर दिया गया है और अब उन्हें हटाना मुख्य निर्वाचन-आयुक्त की सिफारिश पर निर्भर कर दिया गया है। शायद यह इसलिये किया गया है कि निर्वाचन-आयुक्त स्थायी अधिकारी होंगे और यदि केवल एक ही स्थायी अधिकारी हो, तो स्पष्टत: विधि में ऐसा उपबन्ध नहीं हो सकता कि प्रादेशिक आयुक्तों और निर्वाचन अधिकारियों को हटाना समस्त आयुक्तों

के विनिश्चय पर निर्भर होना चाहिये। किन्तु इसी कारण, श्रीमान्, यह मामला राष्ट्रपति की इच्छा पर ही नहीं छोड़ देना चाहिये, वास्तव में उस समय के प्रधानमंत्री पर ही नहीं छोड़ना चाहिये, वरन् विधि द्वारा निश्चित होना चाहिये।

मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना ने कल डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये नये मस्विदे पर कई संशोधन पेश किये थे। उनमें से कुछ को स्वीकार करना शायद क्रियात्मक न हो, पर मेरे विचार में उन्होंने विचाराधीन मस्विदे की त्रुटियों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करके सार्वजनिक सेवा की है। मेरे विचार में मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर का यह कर्त्तव्य है कि वे इस मामले पर ध्यानपूर्वक विचार करें और ऐसे रक्षणकवच रखें जिससे व्यापक रूप में यह संतोष हो जाये कि हमारी निर्वाचन व्यवस्था केवल प्रान्तीय राजनैतिक प्रभावों से ही नहीं वरन् केन्द्रीय राजनैतिक प्रभावों से भी स्वतंत्र रहेगी। हम वयस्क मताधिकार पर आधारित लोकतंत्र स्थापित करना चाहते हैं। अत: यह आवश्यक है कि निर्वाचन व्यवस्था के ठीक कार्य करने का विश्वास उत्पन्न करने के लिये प्रत्येक संभव उपाय करना चाहिये। यदि निर्वाचन-व्यवस्था में दोष है अथवा वह व्यवस्था कुशल नहीं है अथवा उसे ऐसे व्यक्ति चला रहे हैं जिनकी सच्चाई पर हम निर्भर नहीं रह सकते, तो लोकतंत्र का स्रोत ही विषाक्त हो जायेगा; इतना ही नहीं, लोग निर्वाचनों से यह सीखने के बजाये कि उन्हें अपना मत कैसे देना चाहिये, कि वे अपने मत का विवेकपूर्ण प्रयोग करके किस प्रकार संविधान में परिवर्तन कर सकते हैं और प्रशासन में सुधार कर सकते हैं, वे यही सीखेंगे कि किस प्रकार षड़यन्त्रों पर आधारित दलों का निर्माण हो सकता है और वे जो कुछ चाहते हैं उन्हें प्राप्त करने के लिये वे कौन से अनुपयुक्त उपायों का प्रयोग कर सकते हैं।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार में सदस्यों को पता है कि हमें आज कार्यावली समाप्त करनी है। अन्यथा हमें शायद कल भी बैठना पड़े।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करने यहां आया हूं। आरम्भ में जब मैं प्रथम बार इस सभा में आया था तो मेरा ख्याल था कि प्रान्तों को शक्तिशाली बनाना चाहिये और उस हद तक केन्द्र को झुक जाना चाहिये। किन्तु बहुत ज्यादा अनुभव के पश्चात् और प्रान्तों तथा राज्यों में जो कुछ हो रहा है उस पर काफी विचार करने के पश्चात्, अब मेरा यह विचार है कि आगामी कई वर्षों के लिये केन्द्र को देश के व्यापक कल्याण से सम्बद्ध सब महत्त्वपूर्ण मामलों का भार अपने ऊपर ले लेना चाहिये और प्रान्तीय क्षेत्र को कम कर देना चाहिये। लोकतंत्रीय व्यवस्था में निर्वाचन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चीज है और यह अत्यन्त आवश्यक है कि उनका नियंत्रण और देखभाल किसी अत्यधिक कुशल, स्वतंत्र और निष्पक्ष निकाय के हाथ में हो। कुछ प्रान्त जिस प्रकार अपना कार्य चला रहे हैं उससे पता चलता है कि प्रान्तों में दलबन्दी का जोर है और तत्समय सत्तारूढ़ दल अथवा गिरोह की सदा ही यही इच्छा होगी कि अपने मतलब के निर्वाचन न्यायाधिकरण तथा अधिकारी नियुक्त करें जिससे कि वे निर्वाचनों पर नियंत्रण करके उनसे अपने लिये लाभ उठा सकें। परिणाम यह होगा कि निर्वाचन अधिकरण और अधिकारी भ्रष्टाचार और पक्षपात से स्वतंत्र नहीं होंगे। इसी कारण मैं केन्द्र द्वारा निर्वाचनों पर नियंत्रण रखने के आयोजन का स्वागत करता हूं

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

जिससे कि निर्वाचन व्यवस्था की निष्पक्षता तथा कार्यकुशलता पर भरोसा किया जा सके। हमें पश्चिमी बंगाल और अन्य प्रान्तों का अनुभव है। पश्चिमी बंगाल में दलबन्दी का बोलबाला है। कलकत्ते की कांग्रेस में और जिलों में भी कई गिरोह और गुट हैं जो एक दूसरे पर स्वाभाविक भ्रष्टाचार आदि का दोषारोपण करते हैं। वे अत्यन्त बेहूदे तरीके से परस्पर लड़ते रहते हैं जिससे देश के व्यापक हितों को हानि पहुंचती है। कई राज्यों में भी यही हो रहा है। वृहद् राजस्थान में कैसा बेहूदा झगड़ा चल रहा है और कई अन्य राज्यों में भी यही हाल है। यदि हम यह नहीं चाहते कि प्रान्तों और राज्यों में अराजकता और अव्यवस्था फैले, तो हमें पहली बात यह करनी चाहिये कि निर्वाचनों पर नियंत्रण करना चाहिये। विविध दलों की नीतियों और कार्यवाहियों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये, वरन् चुनावों के करने में निष्पक्षता और कुशलता का विश्वास पैदा करना चाहिये। आयोग का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य निर्वाचन अधिकारियों की नियुक्ति करना होगा जिनकी निष्पक्षता, कार्यकुशलता और स्वाधीनता पर बहुत कुछ निर्भर रहेगा, और मुझे विश्वास है कि इन निर्वाचनों पर केन्द्रीय नियंत्रण का गम्भीर क्षेत्रों में स्वागत किया जायेगा। जैसा कि एक वक्ता ने कहा है और जैसा कि सुविदित है मतपेटिका की गूढ़ता निर्वाचनों में बहुत महत्त्व की वस्तु है क्योंकि इसमें मत-स्वातन्त्र्य की रक्षा होती है और इस गूढ़ता की पूरी तरह और प्रभावी रूप में रक्षा होनी चाहिये। हमने शिकायतें और प्रति शिकायतें सुनी हैं कि दक्षिणी कलकत्ता के अर्वाचीन निर्वाचन में मतपेटिका की गुप्तता और मतशलाका की अखंडता का उल्लंघन किया गया था। मुझे पता नहीं है कि इन शिकायतों में कितना तथ्य है, किन्तु उनसे कुरुचि उत्पन्न हो जाती है। मुझे विश्वास है कि यदि इन मामलों पर केन्द्र का नियंत्रण रहे, तो इस प्रकार की शिकायतें आदि करने की भावना दूर हो जायेगी। जो अधिकारी इन निर्वाचनों का प्रबन्ध करने के लिये नियुक्त हों वे सब संदेहों से परे होने चाहिये और उनको ऐसे चुनना चाहिये कि प्रान्तीय गुट या दलबन्दी का प्रभाव हट जाये। श्रीमान्, मैं सदन का अधिक समय नहीं लेना चाहता। मैं इस अनुच्छेद के लिये अपना नम्र और हार्दिक समर्थन प्रदान करता हूं।

***श्री के.एम. मुन्शी** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं अपने मित्र डा. अम्बेडकर के संशोधन संख्या 99 का समर्थन करने के लिये खड़ा हुआ हूं। इस संशोधन पर दो ओर से आक्रमण हुए हैं, एक मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू की ओर से इस आधार पर कि यह संशोधन पर्याप्त नहीं है, इससे निर्वाचन-आयोग काफी स्वतंत्र नहीं बनता, केन्द्रीय सरकार उस पर ऐसा प्रभाव डाल सकती है कि न्यायपूर्ण निर्वाचन न हो। यह एक आधार है। दूसरा आधार, जिसके समर्थक मेरे माननीय मित्र श्री पातस्कर और कुलाधर चालिहा आसाम वाले हैं, पेश किया गया है। वह यह है कि यह प्रान्तीय स्वशासन पर अनाधिकार प्रवेश है। मैं इन दोनों बातों पर पृथक् पृथक् बोलूंगा।

श्रीमान्, मस्विदा समिति की ओर से जो संशोधन आया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि निर्वाचनों से न केन्द्रीय सरकार का ही और न प्रान्तीय सरकारों का ही कोई सम्बन्ध होगा। जैसा कि सदन देखेगा मुख्य निर्वाचन-आयुक्त लगभग स्वतंत्र है। नि:संदेह वह राष्ट्रपति

अर्थात् केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त होगा। इस अधिकरण को नियुक्त करने के लिये भारत में राष्ट्रपति के सिवाय राष्ट्रपति से उच्चतर कोई प्राधिकारी नहीं हो सकता। आप इस महत्त्वपूर्ण बात को हटा नहीं सकते।

इस संशोधन के विरुद्ध अगली युक्ति यह है कि यह संशोधन पुराने संशोधन संख्या 103 से भिन्न है जो कि मस्विदा-समिति की ओर से पेश होना था, जिसके अनुसार मुख्य निर्वाचन आयुक्त के अतिरिक्त अन्य आयुक्त केवल उसी प्रकार हटाये जा सकते थे जिस प्रकार कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हटाये जा सकते हैं। बिल्कुल ठीक। किन्तु इस परिवर्तन का एक अत्यन्त अच्छा कारण हैं। दो निर्वाचनों के बीच साधारणत: पांच वर्ष का अन्तर होगा। हम ऐसा निर्वाचन-आयोग नहीं रख सकते जो इन पांच वर्षों तक बेकार बैठा रहे। मुख्य निर्वाचन आयुक्त एक स्थायी अधिकारी होगा जो अपने पद का कार्य करेगा और दिन प्रतिदिन के कार्य की देखभाल करेगा, किन्तु जब देश में बड़े चुनाव होंगे—केन्द्रीय या प्रान्तीय—तब काम को सम्हालने के लिये आयोग को बढ़ाना पड़ेगा। अत: आयोग में अधिक सदस्य जोड़ दिये जायेंगे। नि:संदेह उन्हें राष्ट्रपति नियुक्त करेगा, पर सदन देखेगा कि वे समय समय पर नियुक्त होने हैं एक बार वे किसी अवधि के लिये नियुक्त कर दिये जायेंगे तो उन्हें राष्ट्रपति की इच्छानुसार नही हटाया जा सकता। अत: उस हद तक उनकी स्वतंत्रता निश्चित रहेगी। अत: यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि ये अस्थायी निर्वाचन आयुक्त आवश्यकतानुसार स्वतंत्र नहीं होंगे। कुछ भी हो मुख्य निर्वाचन आयुक्त जो कि स्वतंत्र होगा, उनका सभापति होगा और उसे सारे आयोग पर निदेशन और देखभाल की शक्ति होगी। अत: यह कहना ठीक नहीं है कि किसी हद तक आयोग की स्वाधीनता को कम कर दिया गया है।

हमें एक बात स्मरण रखनी चाहिये कि आखिर निर्वाचन विभाग न्यायपालिका के समान शासन का अर्थ-स्वतंत्र अंग नहीं है। निर्वाचन करवाना तत्कालीन सरकार का कर्त्तव्य तथा कृत्य है। हम अब जो वृहद् निर्वाचन गण रख रहे हैं, मत-नामावली जो कि कई करोड़ों तक पहुंच जायेगी—इन सबके लिये अवश्यमेव निर्वाचन अधिकारियों, लिपिकों निर्वाचन स्थानों पर नियंत्रण करने वाले व्यक्तियों की लम्बी चौड़ी सेना अपेक्षित होगी। अब यह सेना ऐसी व्यवस्था के रूप में नहीं रखी जा सकती जो सरकार से स्वतंत्र हो। इसका प्रबन्ध केवल केन्द्रीय सरकार, प्रान्तीय सरकार अथवा अब के समान स्थानीय प्राधिकारी ही कर सकते हैं। यह संभव अथवा अभीष्ट नहीं है कि एक राजतंत्र के भीतर दूसरा राजतंत्र स्थापित करके निर्वाचन सम्बन्धी मामलों को शासन के पूर्णत: स्वतंत्र अंग पर छोड़ दिया जाये। इस प्रकार की स्वतंत्र सत्ता को उच्चतर शासन के रूप में बैठने नहीं दिया जा सकता जो कि यह निश्चय करे कि कौन सी सरकार सत्तारूढ़ होगी। यह बहुत राजनैतिक जोखिम की बात होगी यदि निर्वाचन अधिकरण देश में ऐसी राजनैतिक सत्ता बन जाये। यही काफी नहीं है कि वह स्वतंत्र रहे, यह भी अपेक्षित है कि वह निष्पक्ष रहे। अत: निर्वाचन आयोग को बहुत हद तक सरकार का सहयोगी होना चाहिये; केवल इतना ही नहीं, वरन् उसे काफी हद तक सरकार का सहायक होना चाहिए, सिवाय उन कृत्यों के निर्वहन के विषय में जोकि उसे विधि द्वारा प्रदत्त हैं।

[श्री के.एम. मुन्शी]

कुछ निर्देश किया गया है कि संसद की शक्तियों को सुरक्षित नहीं रखा गया है। मैं कह सकता हूं कि संशोधन संख्या 123 में, जो कि डा. अम्बेडकर पेश करने वाले हैं, संसद को शक्ति दी गई है कि वह विधानमंडलों के निर्वाचनों के सम्बन्ध में उपबन्ध बना सकती है। हां, वे इस संविधान के उपबन्धों के अधीन होंगे। इसी प्रकार श्रीमान्, आप देखेंगे कि संशोधन संख्या 128 में राज्य के विधानमंडलों को शक्ति दी गई कि वे विधानमंडलों के निर्वाचन के सम्बन्ध में उपबन्ध बना सकें। अतः संसद तथा राज्यों के विधानमंडल निर्वाचनों के विषय में उपबंध बना सकते हैं, पर हां, इस संशोधन विषय के अधीन रह कर अर्थात् निर्वाचन अधिकरण के अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण के अधीन। उदाहरणार्थ, आज कल निर्वाचनों पर उन अधिकारियों का नियंत्रण होता है जो कि केन्द्र अथवा प्रान्तों द्वारा नियुक्त होते हैं। अब यह प्रयोजन है कि वे सरकार के दिन प्रतिदिन के प्रभाव के अधीन न रहें और न वे सरकार से पूर्णतः स्वतंत्र ही रहें और इसलिये दोनों अवस्थाओं के बीच एक प्रकार का समझौता कर दिया गया है; किन्तु मैं अपने माननीय मित्र श्री कुंजरू से सहमत हूं कि, स्पष्टता के लिये ही सही, संदेहों को दूर करने के उद्देश्य से खंड (2) में कुछ संशोधन की आवश्यकता है। खंड (2) के आरम्भ में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें: ''इस सम्बन्ध में संसद द्वारा बनाई गई विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए।'' इसी प्रकार खंड (4) में भी जहां कि निर्वाचन आयुक्तों और प्रादेशिक आयुक्तों की सेवा की शर्ते और पदावधि निर्धारित है, वहां ये शब्द रखना उपयुक्त होगा: 'इस विषय में संसद द्वारा बनाये गये उपबन्धों के अधीन रहते हुए।' हां, वह संशोधन संख्या 123 का परिणाम होगा, किन्तु हम इस विषय में कोई संदेह नहीं चाहते, अतः यह अच्छा होगा यदि ये शब्द रख कर सेवा की शर्तों और पदावधि पर संसदीय नियंत्रण रख दिया जाये।

***श्री एच.वी. कामतः** आप संशोधन में इन शब्दों को कैसे प्रविष्ट करेंगे?

***श्री के.एम. मुन्शीः** मुझे संदेह नहीं है कि डा. अम्बेडकर मेरे सुझाव को स्वीकार कर लेंगे और इन संशोधनों को पेश करेंगे।

यह प्रश्न प्रादेशिक आयुक्तों की अर्हताओं के विषय में उठाया गया था। उनका उपबंध संसदीय विधान द्वारा अनुच्छेद 113 के अधीन अथवा नये पद के अधीन, जोकि खंड (2) और (4) में जोड़ देना चाहिये, आसानी से किया जा सकता है। इस प्रकार इन विस्तार की बातों पर संसद की शक्ति निश्चित हो जायेगी। अतः इस संशोधन द्वारा निर्वाचन आयोग की निष्पक्षता तथा स्वातन्त्र्य को जहां तक कि वे इन परिस्थितियों में आवश्यक है और विस्तार की बातों पर संसद की प्रभुता को बनाये रखा गया है।

अब मैं आलोचना के दूसरे अंग को लेता हूं। और वह है यह तर्क कि यह उपबंध तथाकथित प्रांतीय स्वायत्तता को कम करता है अथवा छीनता है। यह तर्क बारम्बार प्रत्येक अनुच्छेद के विषय में पेश किया जाता है, और मेरे विचार में अब समय आ गया है कि इस तर्क को पेश करने वाले माननीय सदस्य इस स्थिति को स्वीकार कर लें कि सदन ने देश के लिये अधिक उपयुक्त उपाय को अपनाया है और संघवाद पर सैद्धांतिक लेखकों के आदर्शवादी विचारों की नहीं माना है। डा. अम्बेडकर ने अपनी प्रारम्भिक वक्तृता

में यह स्पष्ट कर दिया था कि निर्वाचन आयोग के विचार को तो जनवरी या फरवरी 1947 में ही स्वीकार कर लिया गया था, जब कि देश के विभाजन का प्रश्न निश्चित नहीं हुआ था। मूलाधिकार समिति ने यह सुझाव रखा था। इसे परामर्शदात्री समिति ने एकमत से स्वीकार कर लिया था और फिर सदन ने भी इसे एकमत से स्वीकार कर लिया था। अत: इसे समस्त सदन का और समूचे देश का अभिप्राय समझना चाहिये कि वस्तुस्थिति को देखते हुए निर्वाचन सम्बन्धी मामलों को केन्द्र और प्रान्तों के क्षेत्र से निकाल देना चाहिये। ऐसी अवस्था में केवल यही प्रश्न रह जाता है कि यह काम कैसे किया जाये।

उदाहरण के विषय में, कनाडा के अधिराज्य निर्वाचन अधिनियम की धारा 19 की ओर निर्देश किया जा चुका है। अधिनियम में लिखा है कि समस्त कनाडा के लिये एक मुख्य निर्वाचन अधिकारी, हमारे समान आयोग नहीं रखा गया है, समस्त निर्वाचनों का अधीक्षण नियंत्रण और निदेशन करेगा। उसकी पदावधि ठीक वही है जो हमने मुख्य निर्वाचन आयुक्त के लिये स्वीकार की है।

इस बहस के मध्य एक और तर्क पेश किया गया था कि यह अलोकतंत्रात्मक है। मैं यह नहीं समझ पाता कि इस उपबन्ध का लोकतंत्र पर क्या प्रभाव पड़ेगा। यह संविधान सभा, यदि यह देश के लिये संविधान बनाती है, यह भारत की सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न जनता की प्रतीक ही है, प्रान्तों के विभिन्न लोगों की प्रतीक नहीं है जो कि संविधान का निर्माण करने के लिये संघ में समवेत हुए हों। हमें यह प्रमुख तथ्य भूल नहीं जाना चाहिये। सदन को यह अधिकार है कि वह देश की स्थिति को देखकर, वस्तुस्थिति को देखकर, कुछ शक्ति केन्द्र को दे दे, कुछ शक्ति प्रान्तों को दे दे, एक से दूसरे को शक्ति हस्तांतरित कर दे। उससे संविधान-सभा के प्रतिनिधित्व में कमी नहीं आती और न सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न भारतीय जनता की लोकतंत्रात्मक शक्ति ही कम होती है। इस विषय में सदन किसी सैद्धान्तिक विचारों के बंधन में नहीं रह सकता। अनुच्छेद 226 पर बहस के समय भी मैंने देखा था कि इसी प्रकार का तर्क उपस्थित किया गया था। किन्तु हमें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि यह संविधान-सभा भारत की सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न जनता की, जो कि एक ही एकक है, प्रतीक के रूप में ही यह विनिश्चय करने जा रही है कि देश की वास्तविक स्थिति को देखते हुए केन्द्र और प्रान्तों के क्या कृत्य होंगे। अब, श्रीमान्, यदि ऐसा है तो सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न जनता और उनके अभिकर्ता के रूप में संविधान-सभा क्रियात्मक रूप में निर्वाचनों की शुद्धता को बनाये रखने के लिये बाध्य है। यह काम इस संशोधन में प्रस्तावित व्यवस्था स्थापित करके ही किया जा सकता है। इसे अलोकतंत्रात्मक बताना सर्वथा निराधार है। यदि लोकतंत्र स्थापित होना है तो भारत की सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न जनता को अपने प्रतिनिधि ऐसी प्रणाली से चुनने का अधिकार होना चाहिये, जो कि संदेह से परे हो, पक्षपात से परे हो। भ्रष्टाचार केवल अभ्यर्थियों की ही ओर से नहीं होता, तत्कालीन सरकार की ओर से भी भ्रष्टाचार हो सकता है। अत: यह आवश्यक है कि हम इस प्रश्न पर किसी सैद्धान्तिक प्रान्तीय स्वायत्तता के दृष्टिकोण से विचार न करें जिस बात को कि इस सदन में बार-बार उठाया जा रहा है।

[श्री के.एम. मुन्शी]

मेरे माननीय मित्र श्री कुलाधर चालिहा ने, जो कि असम से आये हैं, कहा कि इससे प्रान्तीय सरकारों की शक्ति पर प्रभाव पड़ता है। उन्होंने आगे चल कर यह दृष्टिकोण रखा कि कार्यकुशलता और ईमानदारी के हिसाब से केन्द्र प्रान्तों से अधिक ऊंचा नहीं है। यदि मैंने ठीक सुना है तो उन्होंने कहा कि इस विषय में प्रान्त केन्द्र से अधिक अच्छे हैं। यदि ऐसा है तो मैं चाहता हूं कि हम जितनी जल्दी अपने लोकतंत्र की समाप्ति कर दें उतना ही अच्छा रहेगा। मेरे असम वाले मित्र को पता होना चाहिये कि असम से शिकायत पर शिकायत आती रही है कि असम में जो लोग बस गये हैं उन्हें निर्वाचन नामावलियों से दूर रखने के लिये कई प्रकार के उपाय किये जाते हैं। वे शिकायतें गलत हो सकती है; मैं यहां उनका निर्णय नहीं कर रहा। पर शिकायतें हैं अवश्य.....

***श्री कुलाधर चालिहा:** मैं इस पर आपत्ति करता हूं।

***श्री के.एम. मुन्शी:** प्रत्येक विभाग को, जिसका कि उनसे सम्बन्ध है, उन शिकायतों का पता है। वे शिकायतें आती हैं, यही बात एक कारण है कि हमारी वर्तमान स्थिति में प्रान्तीय सरकारों पर विश्वास नहीं किया जा सकता कि वे निर्वाचनों में यथेष्ट निष्पक्ष होंगी।

***श्री कुलाधर चालिहा:** मैं इस कथन का कड़ा विरोध करता हूं।

***अध्यक्ष:** बहस में गर्मी लाने की आवश्यकता नहीं है। हम केवल एक निरे सांविधानिक प्रश्न पर विचार कर रहे हैं।

***श्री के.एम. मुन्शी:** मैं गर्मी नहीं ला रहा हूं। मेरे माननीय मित्र ने कहा कि प्रान्त केन्द्र से अथवा इस संविधान-सभा से बहुत ऊंचे हैं। मैंने उन्हें स्मरण कराया कि असम के नेता के रूप में आने पर यह एक आश्चर्यजनक कथन है। यह बात किसी अन्य प्रान्त की ओर से उठ सकती है; वह अलग बात है।

जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा ने कहा है, विगत में कई निर्वाचन अधिकरण प्रान्तीय सरकारों द्वारा नियुक्त किये गये थे। वे कांग्रेस सरकारें नहीं थीं. वे अन्य सरकारों द्वारा नियुक्त किये गये थे। वे एक उद्देश्य विशेष को पूरा करने के लिये नियुक्त किये गये थे। जैसा कि माननीय सदस्य जानते हैं, इस सदन का एक प्रमुख सदस्य, जो अपने प्रान्त की कांग्रेस संस्था का प्रधान था, गत शासन काल में अन्याय का शिकार हुआ था और विधान-मंडल का सदस्य बनने से अपवर्जित हो गया था। मुख्यमंत्री के लिये यह बहुत आसान है कि वह मनमाना निर्वाचन अधिकरण बना दे और एक सबल प्रतिद्वन्द्वी को पांच-सात वर्ष के लिये क्षेत्र से हटा दे। अत: यह आवश्यक है कि इन मामलों को प्रान्तों के अस्थायी आवेशों से मुक्त रखना चाहिये।

श्रीमान्, एक बात और है। हमें यह समझ लेना चाहिये—और मैं माननीय मित्रों श्री पातस्कर और श्री चालिहा को यह सामान्य उत्तर देना चाहता हूं—कि आजकल हमारे सामने जो अवस्था है उसी को देखकर हम समस्याओं पर विचार कर सकते हैं हम इस

बात को भूल नहीं सकते कि कोई दस ग्यारह देशी राज्य, जो प्रान्तों में उपलब्ध साधारण से लोकतंत्रात्मक वातावरण से भी परिचित नहीं हैं, समान अधिकारों के साथ संघ में प्रवेश कर रहे हैं। हम इस तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकते कि भारत में ऐसे स्थान हैं जहां प्रान्तीय स्वायत्तता को अधिक पक्की तरह स्थापित करना आवश्यक है। इन परिस्थितियों में, विश्व की स्थिति के अतिरिक्त भी, यह स्वाभाविक ही है कि केन्द्र का उन मामलों पर अधिक नियंत्रण होना चाहिये जिनका समूचे राष्ट्रीय अस्तित्व पर ही प्रभाव पड़ता है। अमरीका में भी, जहां केन्द्र के विकेन्द्रीकरण का प्रश्न नहीं था, वरन् तेरह स्वाधीन राज्य पहले एक प्रकार के संगठन में समवेत हुए थे और बाद में संघ बनाया था, हम वहां भी क्या देखते हैं। 1929 के आर्थिक संकट के पश्चात् कृषि, शिक्षा, उद्योग, बेकारी, असुरक्षा सब शनैः शनैः कई प्रकार से केन्द्र के नियंत्रण तथा प्रभाव में चले गये। वहां संविधान लचकीला नहीं है अतः उन्हें इस परिणाम को प्राप्त करने के लिये कई चक्कर काटने पड़े। राष्ट्र से छोटा एकक आजकल कोई नहीं हो सकता, अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में राष्ट्र भी एक छोटा सा एकक ही है। यह विचार भ्रममूलक है कि प्रांतीय स्वायत्तता प्रान्तों का जन्मजात अधिकार है। अमरीका के एक मुख्य राजनैतिक विचारक चार्लस मेरियम ने अपनी पुस्तक ''सांविधानिक सुधार की आवश्यकता'' में संयुक्त राज्य अमरीका के राज्यों के निर्देश से लिखा है: ''अब अधिकांश राज्य आर्थिक और सामाजिक इकाइयां नहीं रहे है और संगठन और प्रतिनिधित्व के एककों के रूप में उनकी स्थिति को गम्भीर चुनौती दी जा चुकी है।'' हमारे देश में स्थिति भिन्न है। 1833 के परिषद् अधिनियम से लेकर भारत शासन अधिनियम 1935 तक प्रान्तों पर केन्द्रीय नियंत्रण रहा है और वह अच्छा सिद्ध हुआ है। भारत ने गत सौ वर्षों में जो शक्ति, ताकत और सार्वजनिक जीवन की एकता प्राप्त की है, वह मुख्यतः देश के केन्द्रित प्रशासन के कारण ही है। जो सदस्य उसी विषय का राग अलाप रहे हैं मैं उन्हें चेतावनी देना चाहता हूं कि वे एक सर्वोपरि बात को स्मरण रखें कि भारत के स्वर्ण दिवस वही थे जब कि देश में प्रबल केन्द्रीय प्राधिकार था चाहे वे मौर्य राज्य में हों चाहे मुगल राज्य में और सबसे अधिक दुःखद दिन वही थे जबकि केन्द्रीय प्राधिकार ढीला पड़ गया था और प्रान्त उसका विरोध करते थे। हम यह चाहते हैं कि प्रान्तीय क्षेत्र अखंड रहे, वे काफी स्वायत्तता का आनन्द ले, किन्तु राष्ट्रीय सत्ता के अधीन होकर ही वे ऐसा करे। जब राष्ट्रीय संकट आये, तब हमें समझ लेना चाहिये कि केवल केन्द्र ही बीच में आकर उस अराजकता के विरुद्ध हमारी रक्षा कर सकता है जो कि अन्यथा उत्पन्न हो जायेगी। अतः मेरा निवेदन है कि प्रान्तीय स्वायत्तता विषयक युक्ति का कोई प्राथमिक सैद्धांतिक मूल्य नहीं है। हमें प्रत्येक विषय पर या मामले पर इसी दृष्टिकोण से विचार करना है कि वर्तमान परिस्थितियां क्या हैं और अधिकतम राष्ट्रीय कुशलता प्राप्त करने के लिये हम केन्द्रीय या प्रान्तीय नियंत्रणों का हिसाब ठीक कैसे जमा सकते हैं। उसी दृष्टिकोण से मेरा निवेदन है कि मेरे मित्र डा. अम्बेडकर का संशोधन अच्छा है, बहुत अच्छा है और देश के लिये बहुत लाभदायक है।

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, अब प्रश्न पर मत लिये जायें।

***अध्यक्षः** समाप्ति का प्रस्ताव रखा गया है। मैं सदन की भावना को जान लेना चाहता हूं।

[अध्यक्ष]

प्रश्न यह है:

''कि प्रश्न पर मत लिये जायें।''

*प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।*

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे इस संशोधन पर कई दृष्टिकोणों से आलोचना की गई है। किन्तु अपने उत्तर में मेरा यह विचार नहीं है कि बहस में जितनी बातें उठाई गई हैं उन सबका उत्तर दूं। मेरा विचार केवल उन्हीं बातों का उत्तर देने का है जो मेरे मित्र प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना ने उठाई हैं और जिन पर मेरे मित्र पंडित हृदयनाथ कुंजरू ने बल दिया है। मेरे मित्र प्रोफेसर सक्सेना ने जो संशोधन पेश किया है उसमें असल में दो बातें हैं जिन पर हमें विचार करना है। एक बात तो इस निर्वाचन आयोग में आयुक्तों की नियुक्ति के विषय में है और दूसरी बात निर्वाचन आयुक्तों को हटाने के विषय में है। जहां तक हटाने के प्रश्न का सम्बन्ध है, मेरा वैयक्तिक रूप से यह ख्याल है कि मेरे प्रस्ताव में किसी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि सदन देखेगा कि जहां तक निर्वाचन आयोग के सदस्यों को हटाने का सम्बन्ध है, मुख्य आयुक्त की वही स्थिति है जो कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की है। और मैं नहीं जानता कि हमने खंड (4) के परन्तुक में जितनी सुरक्षा की व्यवस्था की है उससे अच्छी व्यवस्था किसी भी अन्य संविधान में विद्यमान हो।

अन्य आयुक्तों के विषय में यह उपबन्ध है कि उन्हें हटाने की शक्ति तो राष्ट्रपति के पास रहने दी गई है, पर उस शक्ति पर एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सीमा है कि अन्य आयुक्तों को हटाने के मामले में राष्ट्रपति मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सिफारिश पर ही कार्यवाही कर सकता है। अत: मेरा कहना यह है कि जहां तक हटाने के प्रश्न का सम्बन्ध है मेरे संशोधन में जो उपबंध रखे गये हैं वह पर्याप्त हैं और उस प्रयोजन के लिये अधिक कुछ भी आवश्यक नहीं है।

अब नियुक्ति के सम्बन्ध में मुझे स्वीकार करना पड़ेगा कि मेरे मित्र प्रोफेसर सक्सेना के कथन में काफी बल है कि निर्वाचन आयुक्त की पदावधि को निश्चित और सुरक्षित करने से कोई लाभ नहीं है, यदि संविधान में ऐसे व्यक्ति को वर्जित करने का कोई उपबंध न हो जो कि मूर्ख या दुष्ट या ऐसा व्यक्ति हो जो कि कार्यपालिका की मुट्ठी में रह सकता हो। मुझे स्वीकार करना है कि मेरे उपबन्ध में कोई ऐसी बात नहीं है कि जिससे कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त या अन्य निर्वाचन आयुक्तों के पद पर किसी अनुपयुक्त व्यक्ति को नामनिर्देशित होने से रोका जा सके। मैं यह भी स्वीकार करना चाहता हूं कि यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न है जिससे मुझे बहुत सरदर्द रहा है और मुझे इस पर संदेह नहीं है कि इससे सदन को बहुत सरदर्दी होगी। संयुक्त राज्य अमरीका में उन्होंने इस प्रश्न का हल अपने संविधान के अनुच्छेद 2 धारा (2) के उपबन्ध द्वारा कर लिया है जिससे कि अनुच्छेद 2 की धारा (2) में उल्लिखित कुछ नियुक्तियां राष्ट्रपति द्वारा सीनेट से पूछे बिना नहीं की जा सकती; जिससे कि जहां तक नियुक्ति की शक्ति का सम्बन्ध है यद्यपि वह राष्ट्रपति में निहित है तदापि इस पर सीनेट को देखभाल का अधिकार है, जिससे कि सीनेट किसी समय जब कोई नाम प्रस्तावित किया जाये, पूछताछ करके आपको संतुष्ट

कर सकती है कि प्रस्तावित व्यक्ति समुचित व्यक्ति है। परन्तु यह भी समझ लेना चाहिये कि यह बहुत विलम्बकारी तरीका है। जब नियुक्ति की जाये तब शायद संसद समवेत न हो और नियुक्ति करना तत्काल आवश्यक हो सकता है। दूसरे अमरीकी आचरण से नियुक्तियां करने में राजनैतिक विचार प्रविष्ट हो सकते हैं और वास्तव में ऐसा होता भी है। परिणामत: मैं यह तो समझता हूं कि अमरीकी संविधान के उपबंध नियुक्तियां करने में राष्ट्रपति पर अत्यन्त ठीक रोक है पर इससे प्रशासनिक कठिनाइयां हो सकती हैं और इसीलिये मैं हिचकिचा रहा हूं कि क्या मुझे आगे चल कर अपने संविधान में अमरीकी उपबन्धों के रखने की सिफारिश करनी चाहिये। मस्विदा समिति ने इस प्रश्न पर अत्यधिक विचार किया है, क्योंकि, जैसा कि मैं कह चुका हूं, यह हमारे लिये सबसे बड़ा सरदर्द है, और मध्यवर्ती उपाय के रूप में यह विचार किया गया था कि यदि यह सभा राष्ट्रपति के लिये तथाकथित अनुदेश पत्र बना दे और दे दे और उसमें कोई ऐसी व्यवस्था रख दे जिससे परामर्श करना, नियुक्तियां करने से पूर्व, राष्ट्रपति के लिये आवश्यक हो तो मेरे विचार में अमरीकी संविधान से जो कठिनाइयां पैदा होती प्रतीत होती हैं वे हट सकती हैं और उसमें जो लाभ है वह प्राप्त हो सकता है। इस समय मेरे लिये यह कहना असंभव है कि जब सदन के समक्ष उन अनुदेशों का मस्विदा आयेगा तब सदन का क्या दृष्टिकोण होगा। यदि सदन मस्विदा समिति के इस सुझाव को ठुकरा दे कि राष्ट्रपति के लिये एक अनुदेश पत्र होना चाहिये, जिसमें अन्य बातों के अतिरिक्त नियुक्तियां करने के विषय में भी एक उपबन्ध होना चाहिये, तो फिर यह समस्या उस प्रकार सुलझ जायेगी। किन्तु जैसा कि मैंनें कहा है, मेरे लिये यह कहना कठिन है कि क्या होगा। अत: अपने माननीय प्रो. सक्सेना की आलोचना को मान कर, जो मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू की आलोचना से समर्थित हुई है, मैं संशोधन संख्या 99 में कुछ संशोधन करने के लिये तैयार हूं। मुझे अफसोस है कि मुझे इन संशोधनों को घुमाने का समय नहीं मिला, किन्तु मैं उन्हें पढ़ दूंगा तो सदन को पता लग जायेगा कि मैं क्या प्रस्ताव कर रहा हूं।

मेरा प्रथम संशोधन यह है:

> ''कि खंड (1) के अन्त में 'to be appointed by the President' ये शब्द हटा दिये जायें।''
>
> ''खंड (2) की पंक्ति 4 में 'appoint' शब्द के स्थान पर 'fix' शब्द रख दिये जायें, तथा उसके पश्चात् निम्न प्रविष्ट कर दिये जायें:

'The appointment of the Chief Election Commissioner and other Election Commissioners shall, subject to the provisions of any law made in this behalf by Parliament be made by the President.' "

'' 'When any other Election Commissioner is so appointed'

आदि, इन शब्दों के पश्चात् शेष खंड की संख्या खंड (2-क) कर दी जाये।''

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, एक औचित्य प्रश्न है नई बातें पेश की जा रही हैं जिनके लिये इस समय अनुमति नहीं मिलनी चाहिये, अन्यथा इस पर और वाद-विवाद आवश्यक होगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मुझे आशा है कि सभापति अन्य सदस्यों को अपने विचार प्रकट करने की अनुमति देंगे।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार में ऐसी अवस्था में सर्वोत्तम उपाय इस अनुच्छेद पर विचार को स्थगित कर देना होगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** ये संशोधन बिल्कुल आपत्तिजनक नहीं है; उनमें यही लिखा है कि जो कुछ किया जाये वह संसद द्वारा निर्मित विधियों के अधीन होना चाहिये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): मेरा सुझाव है कि इन संशोधनों की प्रतिलिपियां तैयार करवाकर सदस्यों को दे दी जायें और उन्हें बाद में लिया जाये।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): मेरा सुझाव है कि इन पर मस्विदा समिति विचार करे। चाहे वे पारिभाषिक ही हों, पर हमें उन पर विचार करने का अवसर मिलना चाहिये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** इन संशोधनों को मस्विदा-समिति से परामर्श करके ही पेश किया गया है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** संशोधनों में केवल यही कहा गया है कि राष्ट्रपति की शक्तियां संसदीय विधान के अधीन होंगी। वे अनुच्छेद के विषय को नहीं बदलते और हमें प्रक्रिया के विषय में इतना कठोर होने की आवश्यकता नहीं है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** इस पर अधिक बहस हो, तब भी मेरे विचार में हमें यह जान लेना चाहिये कि जो कठिनाइयां बताई गई हैं, उन्हें डा. अम्बेडकर कैसे दूर करना चाहते हैं। अत: उन्हें अपने सुझाव रखने दिये जायें।

***अध्यक्ष:** इसीलिये मैंने उन्हें इस संशोधन को पेश करने दिया है। पेश होने के पश्चात् हम निश्चय करेंगे कि उन पर अभी बहस की जाये या किसी और दिन।

***श्री के.एम. मुन्शी:** संशोधनों में केवल यही कहा गया है कि जो काम किया जाये वह संसद की विधियों के अधीन हो। यह संशोधन 123 में पहले ही आ जाता है।

***अध्यक्ष:** संशोधनों को पेश होने दिया जाये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरा अगला संशोधन यह है:

''कि खंड (4) के आरम्भ में यह प्रविष्ट कर दिये जायें:

'इस विषय में संसद द्वारा बताई गई किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए।''

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** श्रीमान्, यह सारवान संशोधन है क्योंकि राष्ट्रपति के स्वविवेक पर संसदीय विधि का बन्धन पड़ सकता है।

***अध्यक्ष:** मैं नहीं समझता कि अधिक बहस आवश्यक है; इन्हें पेश होने दिया जाये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** आप संविधान पर पारिभाषिक बातों से विचार नहीं कर सकते। अत्यधिक पारिभाषिक बातों से संविधान-निर्माण नष्ट हो जायेगा।

***श्री एच.वी. कामतः** आपने उस दिन निर्णय किया था कि सारवान संशोधन स्थगित कर दिये जायेंगे।

***अध्यक्षः** यदि इन्हें सारवान संशोधन समझा जाता है तो वे स्थगित कर दिये जायेंगे। सदन में काफी लोग स्थगन के पक्ष में प्रतीत होते हैं अतः बहस स्थगित रहेगी।

## नया अनुच्छेद 289-क

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि प्रथम सूची (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 110 के निर्देश से प्रस्तावित अनुच्छेद 289-क के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'289क *धर्म, मूलवंश, जाति या लिंग के आधार पर कोई व्यक्ति निर्वाचक नामावलि में सम्मिलित किये जाने के लिये अपात्र न होगा तथा किसी विशेष निर्वाचक नामावली में सम्मिलित किये जाने का दावा न करेगा*—संसद के प्रत्येक सदन अथवा किसी राज्य के विधानमंडल के सदन या प्रत्येक सदन के लिये निर्वाचन हेतु प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्र के लिये एक साधारण निर्वाचक नामावली होगी तथा केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या इनमें से किसी के आधार पर कोई व्यक्ति ऐसी किसी नामावली में सम्मिलित किये जाने के लिये अपात्र न होगा अथवा ऐसे किसी निर्वाचन क्षेत्र के लिये किसी विशेष निर्वाचक नामावली में सम्मिलित किये जाने का दावा न करेगा।''

श्रीमान्, इस अनुच्छेद का उद्देश्य सदन के उस विनिश्चय को कार्यान्वित करना है कि आगे चलकर पृथक् निर्वाचकगण नहीं होंगे। वास्तव में यह खंड अनावश्यक है क्योंकि बाद के संशोधनों द्वारा हम संविधान के मस्विदे के उन उपबंधों को हटा देंगे जिनमें मुस्लिमों, सिखों, आंग्ल भारतीयों आदि के प्रतिनिधित्व का उपबन्ध बनाया गया हैं। परिणामतः यह अनावश्यक है। पर लोगों की यह भावना है कि हमने ऐसा महत्त्वपूर्ण विनिश्चय किया है जो विगत को लगभग समाप्त कर देता है, अतः यह अच्छा है कि संविधान में इसकी स्पष्ट चर्चा हो। इसी कारण मैंने यह संशोधन रखा है।

***अध्यक्षः** क्या मैं इसका यह अर्थ समझूं कि केवल वाद-विवाद के प्रयोजन के लिये ही आपने यह पेश किया है और इसे आप पारित करवाना नहीं चाहते?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** नहीं, श्रीमान्, यह बात नहीं है। मैंने संशोधन पेश किया है। मैं केवल कारण बता रहा था कि मैंने इसे पेश क्यों किया है।

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

मैं दूसरा संशोधन भी पेश करूंगा कि नया अनुच्छेद 289-ख प्रविष्ट कर दिया जाये। मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि संशोधन सूची के संशोधन संख्या 3087 के स्थान पर निम्न संशोधन रख दिया जाये:
>
> 'कि अनुच्छेद 289-क के पश्चात् निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:
>
> '289-ख *लोक सभा और राज्यों की विधान सभाओं के लिये निर्वाचन का वयस्क मताधिकार के आधार पर होना*—लोक सभा तथा प्रत्येक राज्य की विधानसभा के लिये निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होंगे, अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति जो भारत का नागरिक है, तथा जो ऐसी तारीख पर, जैसी कि समुचित विधानमंडल द्वारा निर्मित किसी विधि के द्वारा या अधीन इसलिये नियत की गई हो, इक्कीस वर्ष की अवस्था से कम नहीं है, तथा इस संविधान अथवा समुचित विधानमंडल द्वारा निर्मित किसी विधि के अधीन अनिवास, चित्त विकृति, अपराध अथवा भ्रष्ट या अवैध आचार के आधार पर अनर्ह नहीं कर दिया गया है, ऐसे किसी निर्वाचन में मतदाता के रूप में पंजीबद्ध होने का हकदार होगा।' ''

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं अनुच्छेद 289-ख का विरोध करने के लिये खड़ा हुआ हूं। मैं सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों कारणों से वयस्क मताधिकार के विरुद्ध हूं। मैं वयस्क मताधिकार के विरुद्ध इसलिये हूं कि यह लोकतंत्र के सिद्धान्तों का गम्भीर उल्लंघन है। वयस्क मताधिकार में यह पूर्व धारणा होती है कि निर्वाचकगण समझदार हैं जहां निर्वाचकगण विवेकशील न हो वहां संसदमूलक लोकतंत्र नहीं हो सकता।

***अध्यक्ष:** क्या उस पर अब आपत्ति हो सकती है? हम अनुच्छेद 149 को पहले ही पारित कर चुके हैं जिसमें स्पष्ट लिखा है कि निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होगा। वह शरद्-सत्र में पारित हुआ था।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान्, मैं आपके निर्णय को शिरोधार्य करूंगा। जब वह अनुच्छेद पारित हुआ था तब मैं उपस्थित नहीं था।

***अध्यक्ष:** फिर आप इसका इस समय विरोध नहीं कर सकते।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** यह नया अनुच्छेद वास्तव में निरर्थक है। हो सकता है कि मस्विदा समिति को फिर इसे वापस लेना पड़े।

***अध्यक्ष:** यही उन्होंने कहा है। जब धाराओं की पुन: व्यवस्था करने का समय आयेगा, तब इस धारा को इस रूप में रखना शायद आवश्यक न हो। किन्तु यह पेश हो चुका है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** यह सिद्धान्त तो सदन द्वारा स्वीकृत हो चुका है।

***अध्यक्ष:** यही मैं कहता हूं। सिद्धान्त तो स्वीकृत हो चुका है।

प्रश्न यह है:

''कि प्रथम सूची (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 110 के निर्देश से, प्रस्तावित नये अनुच्छेद 289-क के स्थान पर, निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

289-क. *धर्म, मूलवंश, जाति या लिंग के आधार पर कोई व्यक्ति निर्वाचक नामावली में सम्मिलित किये जाने के लिये अपात्र न होगा तथा किसी ऐसे विशेष निर्वाचक नामावली में सम्मिलित किये जाने का दावा न करेगा*—(क) संसद के प्रत्येक सदन अथवा किसी राज्य के विधान मंडल के सदन या प्रत्येक सदन के लिये निर्वाचन हेतु प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र के लिये एक साधारण निर्वाचन नामावलि होगी तथा केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या इनमें से किसी के आधार पर कोई व्यक्ति ऐसी किसी नामावली में सम्मिलित किये जाने के लिये अपात्र न होगा अथवा, ऐसे किसी निर्वाचन क्षेत्र के लिये किसी विशेष निर्वाचक नामावली में सम्मिलित किये जाने का दावा न करेगा।' ''

*संशोधन स्वीकृत हो गया।*

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 289-क संविधान का अंग बने।''

*प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।*

*संशोधित रूप में अनुच्छेद 289-क संविधान में जोड़ दिया गया।*

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 3087 के स्थान पर, निम्न संशोधन रख दिया जाये:

'कि अनुच्छेद 289-क के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद प्रविष्ट कर दिया जाये:

'289-ख *लोक सभा और राज्यों की विधान सभाओं के लिये निर्वाचन का वयस्क मताधिकार के आधार पर होना*—लोक सभा तथा प्रत्येक राज्य की विधानसभा के लिये निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होंगे, अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति जो भारत का नागरिक है तथा जो ऐसी तारीख पर, जैसी कि समुचित विधान मंडल द्वारा निर्मित किसी विधि के द्वारा या अधीन इसलिये नियत की गई हो, इक्कीस वर्ष की अवस्था से कम नहीं है, तथा इस संविधान अथवा समुचित विधान मंडल द्वारा निर्मित किसी ऐसी विधि के अधीन अनिवास, चित्त-विकृति, अपराध अथवा भ्रष्ट या अवैध आचार के आभार पर अनर्ह नहीं कर दिया गया है ऐसे किसी निर्वाचन में मतदाता के रूप में पंजीबद्ध होने का हकदार होगा।''

*प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।*

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 289-ख संविधान का अंग बने।''

*प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।*

*अनुच्छेद 289-ख संविधान में जोड़ दिया गया।*

*(नया अनुच्छेद 289-ग पेश नहीं किया गया।)*

## अनुच्छेद 290

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान् मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 290 के स्थान पर निम्न रख दिया जाये:

'290. *विधानमंडलों के लिये निर्वाचन के विषय में उपबंध बनाने की संसद की शक्ति*—इस संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, संसद, समय-समय पर विधि द्वारा संसद के प्रत्येक सदन अथवा किसी राज्य के विधान-मंडल के सदन या प्रत्येक सदन के लिये निर्वाचनों से सम्बद्ध या संसक्त सब विषयों के सम्बन्ध में जिनके अन्तर्गत निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन तथा ऐसे सदन या सदनों का सम्यक गठन कराने के लिये आवश्यक विषय भी है, उपबन्ध कर सकेगी।' ''

श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं दूसरे संशोधन को भी पेश करना चाहता हूं जो इसमें संशोधन करता है। मैं प्रस्ताव करता हूं:

'कि प्रथम सूची (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 123 के निर्देश से नये अनुच्छेद 290 में, 'including' शब्द के पश्चात् 'the preparation of electoral rolls and all other' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।'' (हिन्दी में 'अन्तर्गत' शब्द के पश्चात् निर्वाचन नामावलियों का तैयार कराना तथा' ये शब्द प्रविष्ट होंगे।)

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): श्रीमान्, मैंने संशोधन संख्या 100 तथा 129 की सूचना इस विचार से भेजी थी कि निर्वाचनों के विषय में विधियां बनाने का समूचा उत्तरदायित्व तथा क्षेत्राधिकार केन्द्रीय विधानमंडल पर छोड़ दिया जाना चाहिये और निर्वाचन सम्बन्धी मामलों के विषय में विधियां अधिनियमित करने की शक्ति केवल केन्द्रीय विधानमंडल को ही दी जानी चाहिये। अब भी जब कि संशोधन संख्या 99 पर वाद-विवाद हो रहा था तब मैंने यह अनुभव किया कि यदि मेरे संशोधन संख्या 100, 127 और 129 स्वीकृत हो जाते तो इन नये संशोधनों को रखने की कोई आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि, मेरे मतानुसार, यह ठीक नहीं है कि कार्यपालिका को ऐसे उच्च अधिकारियों को नियुक्त करने की शक्ति दी है जिनमें कि निर्वाचनों के विषय में समस्त अधिकार और शक्तियां केन्द्रित हैं। संसद को अन्तिम शक्ति होनी चाहिये। इसी प्रकार मेरे संशोधन संख्या 127 के विषय में, जो कि मैंने पेश नहीं किया है, जब मैंने देखा कि संशोधन संख्या 123 के शब्द ये हैं ''इस संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए, संसद समय-समय पर, विधि द्वारा, निर्वाचनों से सम्बद्ध या संसक्त सब विषयों के सम्बन्ध

में... उपबन्ध कर सकेगी।'' जब संसद को यह शक्ति दे दी गई है तो मेरी समझ में नहीं आता कि प्रान्तों द्वारा प्रयोग के लिये इस अनुच्छेद के अधीन क्या शक्ति शेष रह जाती है। यदि हम चाहते हैं कि निर्वाचनों में एकरूपता हो तो हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि केवल संसद को ही यह शक्ति प्राप्त हो।

अनुच्छेद 289 के अन्तर्गत, ये शक्तियां प्रान्तों के स्थान पर केन्द्र को देने के लिये युक्तियां पेश की गई थी। यदि वे युक्तियां ठीक हैं तो हमारे लिये यह कहना ठीक नहीं लगता कि जो शक्ति अवशिष्ट रह जाये उसका प्रयोग प्रान्तीय विधानमंडल कर सकते हैं। संशोधन संख्या 123 सर्वव्यापक है और इसलिये संशोधन संख्या 128 की कोई आवश्यकता नहीं है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** श्रीमान् मैं अनुच्छेद 291 पर पेश किये गये संशोधन संख्या 128 को रखने का समर्थन करता हूं। मैं अपने मित्र श्री भार्गव से सहमत नहीं हूं। हमने निर्वाचनों को प्रान्तीय विधानमंडलों और राज्यपालों के क्षेत्र से निकाल दिया है। हमने निर्वाचन आयोग की नियुक्ति को लगभग केन्द्र के अधीन ही कर दिया है। यह ऐसा परिवर्तन है जिसके विषय में शिकायतें हुई है कि प्रान्तीय सरकारों को शून्यवत् बना दिया गया है। भ्रष्टाचार को हटाने के लिये हम समस्त शक्ति को संसद में निहित करना चाहते थे। संशोधन 128 में इतना ही कहा गया है कि जिन मामलों के लिये संसद उपबन्ध न बनाये, उनके लिये प्रान्तीय विधान मंडलों को शक्ति होगी। मेरे मित्र श्री भार्गव इतना भी नहीं चाहते। उनके मतानुसार, या तो संसद विधि बनाये, या विधि बनाने वाला कोई प्राधिकारी हो ही नहीं। कुछ ऐसे मामले हो सकते हैं जिनमें एकरूपता के लिये संसद विधि बना सकती है और राज्यों के विधानमंडल अवशिष्ट विधियां बना सकते हैं। संशोधन संख्या 128 में यही उपबन्ध है। मैं नहीं जानता कि इस थोड़ी सी हद तक भी राज्यों के विधान मंडलों को शक्ति क्यों न दी जाये। हम राज्यों के विधान मंडलों पर इतना संदेह क्यों करें कि हम उनसे सब कुछ ही छीन लें? मैं संशोधन संख्या 128 का समर्थन करता हूं।

***अध्यक्षः** मैं देखता हूं कि प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना ने अनुच्छेद 290 पर एक संशोधन की सूचना दी है। जब संशोधन पेश हुए थे तब वे यहां नहीं थे। पर यह सारवान संशोधन नहीं है।

यदि डा. अम्बेडकर उत्तर में कुछ नहीं कहना चाहते तो मैं इस संशोधन पर मत लूंगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मुझे कुछ भी नहीं कहना है, श्रीमान्।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 290 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'290. *विधान मंडलों के लिये निर्वाचनों के विषय में उपबन्ध बनाने की संसद की शक्ति*—इस संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए संसद समय-समय पर, विधि द्वारा संसद के प्रत्येक सदन अथवा किसी राज्य के विधान मंडल के सदन या प्रत्येक सदन के लिये निर्वाचनों से सम्बद्ध या संसक्त सब विषयों के सम्बन्ध

[अध्यक्ष]

में जिनके अंतर्गत निर्वाचक नामावलियों का तैयार कराना तथा निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन तथा ऐसे सदन या सदनों का सम्यक् गठन कराने के लिये अन्य सब आवश्यक विषय भी हैं, उपबन्ध कर सकेगी।' ''

*संशोधन स्वीकृत हो गया।*

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 290 संविधान का अंग बने।''

*संशोधन स्वीकृत हो गया।*

*संशोधित रूप में, अनुच्छेद 290 संविधान में जोड़ दिया गया।*

## अनुच्छेद 291

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 291 के स्थान पर, निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'291. *किसी राज्य के विधान मंडल की ऐसे विधान मंडल के लिये निर्वाचनों के सम्बन्ध में उपबन्ध बनाने की शक्ति*—इस संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए तथा जहां तक संसद इसलिये उपबन्ध नहीं बनाती वहां तक, किसी राज्य का विधानमंडल, समय-समय पर, विधि द्वारा, उस राज्य के विधान मंडल के सदन या प्रत्येक सदन के लिये निर्वाचनों से सम्बद्ध या संसक्त सब विषयों के सम्बन्ध में, जिनके अन्तर्गत ऐसे सदन या सदनों का सम्यक् गठन कराने के लिये आवश्यक विषय भी है, उपबन्ध कर सकेगा।' ''

श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं छठी सूची, पंचम सप्ताह, के संशोधन संख्या 211 को भी पेश करता हूं।

संशोधन इस प्रकार है:

''कि प्रथम सूची (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 128 के निर्देश से, नये अनुच्छेद 291 में, 'including' शब्द के पश्चात् 'the proparation of electoral rolls and all other' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।'' (हिन्दी में 'अन्तर्गत' शब्द के पश्चात् 'निर्वाचक नामावलियों का तैयार कराना तथा' ये शब्द प्रविष्ट होंगे।)

***अध्यक्ष:** अन्य संशोधन भी हैं। संशोधन संख्या 129 नकारात्मक है, अत: वह पेश नहीं हो सकता। संशोधन संख्या 130 और 131 पेश नहीं हो रहे हैं।

क्या कोई सदस्य संशोधन या अनुच्छेद पर कुछ कहना चाहता है?

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, यह अनुच्छेद 291, अनुच्छेद 290 के पश्चात् जाता है और उसका निष्कर्ष है। अनुच्छेद 291 बिल्कुल अनुच्छेद 290 के समान ही है, केवल अनुच्छेद 290 की अन्तिम बात, निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन के विषय में अन्तर है। प्रश्न यहां यह उठता है कि संसद में और राज्य के विधान मंडल में क्या-क्या शक्ति निहित होगी। अनुच्छेद 290 में यह लिखा है कि संसद समय-समय पर विधि द्वारा निर्वाचन

सम्बन्धी सब मामलों के विषय में उपबन्ध बना सकती है—वहां यह पद प्रयुक्त हुआ है 'सब मामलों के विषय में।' यहां फिर, वे ही शब्द प्रयुक्त हुए हैं, अर्थात् अनुच्छेद 291 में लिखा है कि राज्य का विधान मंडल समय-समय पर निर्वाचन सम्बन्धी सब मामलों के विषय में उपबन्ध बना सकता है। अर्थात् विधान मंडल के किसी सदन के निर्वाचन सम्बन्धी सब मामले संसद के भी क्षेत्र में आते हैं और राज्यों के विधान मंडल के क्षेत्र में भी आते हैं। क्या हम संसद को और राज्य विधान मंडल की प्रदत्त शक्तियों की सीमा को परिभाषित करने जा रहे हैं या उन शक्तियों को सीमांकित करने जा रहे हैं? क्या हम दूसरी अनुसूची रखने जा रहे हैं? यही मेरा प्रश्न है। क्या हम इस संविधान के मस्विदे में एक नई अनुसूची रखने जा रहे है जिसमें हम राज्यों के निर्वाचनों सम्बन्धी मामलों में विधान बनाने की संसद की शक्तियों और राज्य के विधान मंडल की शक्तियों को परिभाषित करेंगे? यदि हम कृत्यों को परिभाषित नहीं करेंगे और उनका सुनिश्चित वितरण नहीं करेगे तो मुझे भय है कि इससे किसी न किसी समय संसद और राज्य विधान मंडल में किसी प्रकार का संघर्ष या खींचातानी हो सकती है। नि:संदेह 291 में इसके लिये खंड है कि: ''जहां तक इस विषय में संसद द्वारा कोई उपबन्ध न बनाया जाये।'' श्रीमान्, यदि राज्यों के निर्वाचनों के सम्बन्ध में सब मामलों पर संसद विधि बना दे—ऐसा करने की शक्ति 290 के अधीन उसे प्राप्त है; केन्द्रीय संसद को राज्यों में निर्वाचनों सम्बन्धी सब मामलों में विधि बनाने की शक्ति है जिनमें निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन भी समाविष्ट है जो कि राज्य से ले लिया गया है—मैं उस पर आपत्ति नहीं करता—पर फिर राज्यों के लिये क्या बचेगा? निर्वाचन सम्बन्धी विधि मामलों के विषय में, मैं नहीं समझता कि राज्य विधान मंडल को सब क्षेत्राधिकार से वंचित करना बुद्धिमानी होगी। मेरे विचार में, उनके पास कुछ शक्ति छोड़ देना अच्छा होगा और बुद्धिमानी होगी, जिससे कि अधिक सामंजस्य की वृद्धि हो। मुझे आशंका है कि हम यहां कृत्यों का अत्यधिक केन्द्रीयकरण करना चाहते हैं। मेरे विचार में अत्यधिक केन्द्रीयकरण संघ और एककों के बीच सामंजस्य को नहीं बढ़ाता। नि:संदेह हम शक्ति चाहते हैं, पर शक्ति के साथ सामंजस्य भी चाहते हैं। सामंजस्य के बिना, संघ और एककों के बीच सद्भावना के बिना शक्ति निरर्थक है। यह तो केवल कठोरता हुई। अत:, श्रीमान्, मैं तो वैयक्तिक रूप में यही अच्छा समझता हूं कि राज्यों में निर्वाचनों सम्बन्धी कुछ मामलों को राज्य विधान मंडल पर ही छोड़ दिया जाये और राज्य विधान मंडल के किसी सदन के निर्वाचनों सम्बन्धी सब मामलों के विषय में विधि बनाने की समस्त शक्ति संसद को ही नहीं दे देनी चाहिये। मेरे ख्याल में राज्य के विधान मंडल को भी कुछ सुनिश्चित शक्तियां दे दी जानी चाहिये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे ख्याल में श्री कामत ने दोनों अनुच्छेदों 290 और 291 को ठीक प्रकार से पढ़ा नहीं है या ठीक प्रकार समझा नहीं है। अनुच्छेद 290 में संसद को शक्ति दी गई है, पर 291 में लिखा है कि यदि कोई ऐसा मामला है जिस पर संसद ने उपबन्ध नहीं बनाया है तो राज्य विधान मंडल को उस पर उपबन्ध बनाने का अधिकार होगा। यह एक प्रकार का अवशेष है जो संसद राज्य विधान मंडल के लिये छोड़ सकती है। यह तो शेषाधिकार सम्बन्धी अनुच्छेद है। इसके अतिरिक्त इसमें कुछ नहीं है।

**श्री ए. थानू पिल्ले** (ट्रावनकोर राज्य): जब समय अनुसूची के अनुसार काम करना हो, तब क्या स्थानीय विधान मंडल को प्रतीक्षा करनी होगी और यह देखना होगा कि केन्द्रीय संसद क्या करती है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** प्रधानतया: 290 के अधीन उपबन्ध बनाना संसद का कर्त्तव्य होगा। यह उत्तरदायित्व पूर्णत: संसद पर डाल दिया गया है। संसद का यह कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व होगा कि वह 290 में समाविष्ट मामलों के विषय में विधि द्वारा उपबन्ध करे, यदि किसी मामले पर संसद द्वारा स्पष्ट और विशिष्ट उपबन्ध न बनाया गया हो, तो 291 में लिखा है कि संसद 290 में समाविष्ट जिस मामले पर उपबन्ध न बना सकी है उस पर कोई उपबन्ध बनाने का राज्य का विधान मंडल को अपवर्जन न होगा।

***श्री ए. थानू पिल्ले:** क्या मैं डा. अम्बेडकर से जान सकता हूं कि क्या यह अच्छा नहीं होगा कि इस मामले में केन्द्रीय विधान मंडल या स्थानीय विधान मंडल पर ही समस्त उत्तरदायित्व डाल दिया जाये, जिससे कि निर्वाचन समय अनुसूची के अनुसार हो सकें?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं सहमत नहीं हूं। कई मामले महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं और जिन पर संसद यह समझ सकती है कि वह स्वयं ही उपबन्ध करे। कई अन्य मामलों पर संसद समझ सकती है कि वे स्थानीय महत्त्व के हैं अत: उन पर प्रान्त प्रान्त में भिन्नता हो सकती है अत: उन्हें संसद स्थानीय विधान मंडल पर छोड़ना अच्छा समझ सकती है। इसी कारण 290 और 291 में अन्तर रखा गया है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

> ''कि प्रथम सूची (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 128 के निर्देश से, नये अनुच्छेद 291 में, 'including' शब्द के पश्चात् 'the preparation of electoral rolls and all other' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।''

*संशोधन स्वीकृत हो गया।*

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

> ''कि अनुच्छेद 291 के स्थान पर निम्न नया अनुच्छेद रख दिया जाये:
>
> '291. *किसी राज्य के विधान मंडल की ऐसे विधान मंडल के लिये निर्वाचनों के संबंध में उपबंध बनाने की शक्ति*—इस संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए तथा जहां तक संसद इस लिये उपबन्ध नहीं बनाती वहां तक, किसी राज्य का विधान मंडल, समय-समय पर, विधि द्वारा उस राज्य के विधान मंडल के सदन या प्रत्येक सदन के लिये निर्वाचनों से सम्बद्ध या संसक्त सब विषयों के सम्बन्ध में, जिनके अन्तर्गत निर्वाचक नामावलियों का तैयार कराना तथा ऐसे सदनों का सम्यक् गठन कराने के लिये अन्य सब आवश्यक विषय भी हैं, उपबन्ध कर सकेगा।' ''

*संशोधन स्वीकृत हो गया।*

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 291 संविधान का अंग बने।''

*प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।*

*संशोधित रूप में अनुच्छेद 291 संविधान में जोड़ दिया गया।*

## नवीन अनुच्छेद 291-क

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 291 के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद प्रविष्ट कर दिया जाये:

291-क. *निर्वाचन विषयों में न्यायालयों के हस्तक्षेप पर रोक*—इस संविधान में किसी बात के होते हुये भी—

(क) अनुच्छेद 327 या अनुच्छेद 328 के अधीन निर्मित या निर्मातुमभिप्रेत किसी विधि की, जो निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन या ऐसे निर्वाचन क्षेत्रों को स्थानों के बांटने से सम्बद्ध है, मान्यता पर किन्हीं न्यायालयों में आपत्ति न की जायेगी;

(ख) संसद के प्रत्येक सदन अथवा किसी राज्य के विधान मंडल के सदन या प्रत्येक सदन के किसी निर्वाचन पर ऐसी निर्वाचन याचिका के बिना कोई आपत्ति न की जायेगी पर ऐसे प्राधिकारी को तथा ऐसी रीति से उपस्थित की गई है जो समुचित विधान मंडल द्वारा निर्मित विधि के द्वारा या अधीन उपबंधित है;

(ग) ऐसे किसी निर्वाचन या ऐसे निर्वाचन की किसी स्थिति के सम्बन्ध में या उसके विषय में कार्यवाही की अन्तता के लिये उपयुक्त विधान मंडल द्वारा निर्मित किसी विधि के अधीन या द्वारा उपबन्ध किया जा सकेगा।' ''

श्रीमान्, मैं यह भी प्रस्ताव करता हूं:

''कि सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 132 के निर्देश से, नये अनुच्छेद 291-क में, खंड (ग) हटा दिया जाये।''

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 132 के निर्देश से, नये अनुच्छेद 291-क में खंड (ग) हटा दिया जाये।''

*संशोधन स्वीकृत हो गया।*

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 291 के पश्चात्, निम्न नया अनुच्छेद प्रविष्ट कर दिया जाये:

'329. *निर्वाचन विषयों में न्यायालयों के हस्तक्षेप पर रोक*—इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी—

(क) अनुच्छेद 327 या अनुच्छेद 328 के अधीन निर्मित या निर्मातुमभिप्रेत किसी विधि की, जो निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन या ऐसे निर्वाचन क्षेत्रों को स्थानों के बांटने से सम्बद्ध है, मान्यता पर किन्हीं न्यायालयों में आपत्ति न की जायेगी;

[अध्यक्ष]

(ख) संसद के प्रत्येक सदन अथवा किसी राज्य के विधान मंडल के सदन या प्रत्येक सदन के किसी निर्वाचन पर ऐसी निर्वाचन याचिका के बिना कोई आपत्ति न की जायेगी पर ऐसे प्राधिकारी को तथा ऐसी रीति से उपस्थित की गई है जो समुचित विधान मंडल द्वारा निर्मित विधि के द्वारा या अधीन उपबन्धित है।' ''

*संशोधन स्वीकृत हो गया।*

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 291-क संविधान का अंग बने।''

*प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।*

*संशोधित रूप में अनुच्छेद 291-क संविधान में जोड़ दिया गया।*

***अध्यक्ष:** तब हम दूसरे अनुच्छेद 296 को लेते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अनुच्छेद 292 से 295 तक एक पूर्ण योजना के अंग हैं और अनुच्छेद 296 उनके साथ है, अत: हम अनुच्छेद 297 को ले सकते हैं और अभी 296 को छोड़ सकते हैं।

***अध्यक्ष:** क्या यह विचार है कि हम अनुच्छेद 296 पर वाद-विवाद को भी स्थगित कर दें? तो फिर हम अनुच्छेद 297 को लेंगे।

## अनुच्छेद 297

*(संशोधन संख्या 3197 पेश नहीं किया गया।)*

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 297 के खंड (2) में, 'if such members are found qualified for appointment on merit as compared with the members of other communities' इन शब्दों के स्थान पर 'provided that such appointment is made on ground only of merit as compared with the members of other communities' ये शब्द रख दिये जायें।''

श्रीमान्, मेरे विचार में यह संशोधन तो लगभग रचना सम्बन्धी है। मैं इसे मस्विदा समिति के संयुक्त विवेक पर छोड़ देता हूं कि इस पर समुचित अवसर पर विचार कर लें।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं देखता हूं कि यह रचना सम्बन्धी नहीं है पर हम इस पर बाद में विचार करेंगे।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 297 संविधान का अंग बने।''

*प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।*

*अनुच्छेद 297 संविधान में जोड़ दिया गया।*

## अनुच्छेद 298

*(संशोधन संख्या 3172 पेश नहीं किया गया।)*

***अध्यक्षः** इस अनुच्छेद 298 पर भी कोई संशोधन नहीं है।

***श्री फ्रेंक एन्थानी** (मध्यप्रान्त तथा बरार : जनरल): श्रीमान्, मेरा इरादा भाषण देने का नहीं है। मैंने अनुच्छेद 298 पर एक संशोधन की सूचना दी थी कि उसे मैसूर राज्य पर भी लागू कर दिया जाये, किन्तु जब मैंने अपने संशोधन के विषय में डा. अम्बेडकर और श्री मुंशी से बात की तो मुझे बताया गया कि यदि वे मेरा संशोधन स्वीकार करने के लिये तैयार भी हो तब भी वे इस समय ऐसा करने में असमर्थ हैं क्योंकि अभी यह विनिश्चित नहीं हुआ है कि यह संविधान सभा मैसूर राज्य के लिये भी विधान बनायेगी या नहीं, इस कारण, श्रीमान्, मैं इस समय अपने संशोधन को स्वीकार करने के लिये नहीं कहूंगा। यदि और जब यह सभी मैसूर के सम्बन्ध में विधान बनाये, तब मेरे ख्याल में मुझे उस समय इस संशोधन को पेश करने की अनुमति दे दी जाये। इस सम्बन्ध में मैं केवल कुछ ही शब्द कहना चाहता हूं और उन सब सदस्यों को धन्यवाद देना चाहता हूं जिन्होंने कई संशोधनों की सूचना देने पर भी एक बार और अपनी उदारता दिखाई है और इकट्ठे ही अपने संशोधनों को वापस ले लिया है।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** श्रीमान्, जब मैंने अनुच्छेद 297 और 298 पर कुछ संशोधन भेजे थे तब मेरी यह भावना नहीं थी कि अपने नेताओं के वचनों की अवहेलना करूं जिन्होंने आंग्ल-भारतीय सम्प्रदाय को कुछ आश्वासन दिये थे, किन्तु मुझे यह कहना पड़ेगा कि मैंने इन संशोधनों की सूचना एक दूसरे दृष्टिकोण से दी थी। जब ये रियायतें आंग्ल-भारतीय सम्प्रदाय को दी गई थी तब 1947 था और दस वर्ष का समय काफी समझा गया था। सामान्यतः वे दस वर्ष 1957 में समाप्त हो जाते। अब संविधान 1950 में आरम्भ होगा। अतः मैंने सोचा कि रियायत केवल दस वर्ष के लिये देनी चाहिये थी। किसी जाति को कोई रियायत देने पर मुझे कोई आपत्ति नहीं है पर हमें यह समझ लेना चाहिये कि दलित और पीड़ित वर्गों को दी गई रियायतों का आधार भिन्न है। हम चाहते हैं कि इन रियायतों पर अमल हो। स्थान-रक्षण के अतिरिक्त जो कि केवल दस वर्ष के लिये है अन्य रियायतें, जैसे कि शिक्षा सम्बन्धी रियायतें हैं, जो कि अनुच्छेद 301 के अधीन उपबन्धित हैं, शायद दस वर्ष से भी अधिक समय तक के लिये देनी पड़े। किन्तु इस मामले में यह सम्प्रदाय दलित सम्प्रदाय नहीं है। इस सम्प्रदाय को किसी हद तक यह रियायत इसलिये दी गई है कि इसका जीवनस्तर शेष भारतीय समाज से भिन्न था और वह उच्चतर था। अतः मैंने अपने संशोधन इस ख्याल से भेजे थे कि जब श्री एन्थानी ने पिछली बार अल्पसंख्यकों के विषय में कहा था कि समिति ने अनुपम उदारता दिखाई है, मैंने सोचा था कि उनका सम्प्रदाय भी उत्तर में अनुपम न्याय का प्रदर्शन करेगा और यह कह देगा कि वे इन रियायतों को केवल दस वर्ष के लिये ही चाहते हैं, क्योंकि मुझे पता है कि आंग्ल-भारतीय सम्प्रदाय के जितने लड़कों को यह रियायत दी जाती है उतने ही उच्च वर्ग के लड़कों को भी देनी होती है क्योंकि उन विद्यालयों में जिन्हें कि ये अनुदान दिये जाते हैं लगभग 40 प्रतिशत आंग्ल-भारतीय लड़के होते हैं तथा अवशिष्ट साठ प्रतिशत उच्च वर्गों के लड़के होते हैं। अतः यदि हम ये रियायतें देते हैं तो हम केवल आंग्ल-भारतीयों को ही नहीं वरन् उच्च वर्गों को भी देते हैं। आखिर हमारे साधन सीमित हैं और हम

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

एक रुपये के सतरह आने तो कर ही नहीं सकते और यदि आप ये रियायतें बहुत समय तक उन लोगों को देते हैं जिनका जीवनस्तर अच्छा है तो अवशिष्ट जनता को साधारण अधिकारों से भी वंचित करना पड़ेगा। अत: इन व्यक्तियों को शिक्षित करने के लिये आप अन्य जातियों के लड़कों को भूखा मार रहे हैं। मेरे विचार में इस संशोधन की सूचना देने पर मेरे माननीय मित्र श्री एन्थानी मेरी बात पर भ्रान्त धारणा नहीं बना लेंगे। मैंने इन संशोधनों की सूचना इस आशा से दी थी कि वे, देश प्रेम के कारण, सबके लिये समान व्यवहार के सिद्धान्त को मानने के कारण, यह स्वीकार कर लेंगे कि केवल दस वर्ष तक ही रियायत ली जाये, अधिक नहीं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, ये दो अनुच्छेद 297 और 298, जिन में से एक हम पहले ही पारित कर चुके हैं, आंग्ल भारतीयों को कुछ रियायतें देते हैं। मैं आरम्भ में ही कह देता हूं कि मैं किन्हीं ऐसी रियायतों के विरुद्ध नहीं हूं जो ये लोग चाहें। मैं यह भी कह देता हूं कि मैं चाहता हूं कि वे इन रियायतों का सर्वोत्तम उपयोग करे। किन्तु एक शब्द चेतावनी के तौर पर कह देता हूं। मैं अनुभव करता हूं कि ये रियायतें ऐसे सिद्धान्त पर आधारित हैं जिसे अन्यत्र किसी संविधान में स्थान नहीं दिया गया है। हमने पिछड़े हुए लोगों को पृथक प्रतिनिधित्व दिया है। किन्तु इस मामले में स्थिति भिन्न है। अब तक आंग्ल-भारतीय सम्प्रदाय शेष लोगों से भिन्न प्रकार का जीवन बिताता रहा है। शायद वे नये परिवर्तन के अनुसार अपने आप को ढालने में कठिनाई का अनुभव कर रहे हैं अत: वे ये रियायतें चाहते हैं। मैं केवल यही चाहता हूं कि उस सम्प्रदाय के प्रतिनिधि, जो कि यहां उपस्थित हैं और जो बहुत प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं और जो मेरे बहुत अच्छे मित्र हैं, इस बात पर शांति से विचार करें कि इन रियायतों से क्या उनके सम्प्रदाय को सचमुच लाभ होगा। मेरा अनुभव यह है कि गत कई वर्षों में यह सम्प्रदाय शेष जनता से अलग रखा गया और अंग्रेज, जो हमें अपने अधीन रखे हुए थे, उन्हें पूर्णत: पृथक रखने का प्रयत्न करते रहे। उन्होंने उन्हें एक भिन्न प्रकार की शिक्षा दी और भिन्न प्रकार की आदतें सिखाई। मुझे तो केवल आश्चर्य ही होता है कि वे अब भी शिक्षा के अपने पुराने तरीकों पर ही चलना चाहते हैं। मुझे यही आशा है कि चाहे ये रियायतें दे दी जायें, फिर भी उस सम्प्रदाय के लड़के सारे भारतीय लड़कों को दी जाने वाली शिक्षा से लाभ उठायेंगे, और आगे भी अपने पार्थक्य को बनाये नहीं रखेंगे जो कि ब्रिटिश लोगों ने अपने प्रयोजनों के लिये उन पर थोपा था। रेलों और डाक तथा तार के मजदूरों से सम्पर्क होने के कारण मेरा इन मित्रों से परिचय हुआ है। वे अत्यन्त कार्यशील लोग होते हैं; वे राष्ट्र में जवांमर्द तत्व हैं और मुझे पता है कि उन्हें किसी बैशाखी की आवश्यकता नहीं है। पारसियों के समान वे सामान्य निर्वाचन में भी अपने लिये यथेष्ट से अधिक भाग प्राप्त कर लेंगे और सामान्य प्रतियोगिता में भी यही होगा। अत: मेरे विचार में ये दो अनुच्छेद इस भय पर आधारित हैं कि शायद वे इन परिस्थितियों में अपना यथेष्ट अंश प्राप्त न कर सकें। मैं यह मैत्रीपूर्ण मन्त्रणा देना चाहता हूं, यदि इसका कोई मूल्य हो। मैं चाहता हूं कि यह सम्प्रदाय शेष जनता से मिल कर एक हो जाये और अंग्रेज शासकों ने जो भीत इस सम्प्रदाय और शेष जनता के बीच खड़ी थी उसे हटा दे, जिससे कि समय आने पर, कम से कम दस वर्ष बाद, उनके लिये ये सब रियायतें मांगना आवश्यक न रहे—

मुझे आशा है कि ये समझ जायेंगे कि उनके लिये सामान्य जनता में समा जाना श्रेयस्कर होगा। हम सब यह अनुभव करना चाहते हैं कि वे सब हममें से ही हैं। मैं यह भी जानता हूं कि वे यह समझ गये हैं कि अंग्रेजों ने उन्हें अपने खेल में मौहरों की तरह बना लिया था। मुझे आशा है कि वे अपनी पुरानी आदतों और परंपराओं को छोड़ देंगे। मुझे आशा है कि इन अनुच्छेदों का, जिन्हें हम सब एकमत से स्वीकार कर रहे हैं, यह अर्थ नहीं लगाया जायेगा कि वे पुराने पार्थक्य को स्थायी बनाने के लिये बनाये गये हैं, वरन् यह समझा जायेगा कि वे उनकी इस बात में सहायता करने के लिये बनाये गये हैं जिससे कि वे शेष जनता में सम्मिलित हो सकें।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष: महोदय, मैं अनुच्छेद का वर्तमान रूप में विरोध करने के लिये खड़ा हुआ हूं। मैं जानता हूं कि इससे मेरे बहुत बड़े मित्र श्री एन्थानी अप्रसन्न हो जायेंगे। वे इतने मनोहर हैं कि सदन में कोई भी उन्हें खिजाना नहीं चाहता; किन्तु मैं तो उन्हें एक मंत्रणा देना चाहता हूं।

वे देख चुके हैं कि भारत में कितने अल्पसंख्यकों ने विशेष अधिकारों के दावे किये; और उन्होंने यह भी देख लिया है कि उनका क्या परिणाम हुआ। मान लीजिये कि हम इस अनुच्छेद पर सहमत हो जाते हैं। मुझे पता नहीं है कि श्री एन्थानी इस पर सहमत हैं या नहीं। यदि उनका इस अनुच्छेद में हाथ है तो मुझे भय है कि वे अपने सम्प्रदाय की कुसेवा कर रहे हैं जैसा कि इस अनुच्छेद में उल्लिखित है, हम उन्हें जितने अनुदान दे रहे हैं उनसे अधिक नहीं दे सकते। मैं नहीं जानता कि हम इसके लिये कैसे सहमत हो सकते हैं। आखिर यह प्रगतिशील सम्प्रदाय है; यह विशेषाधिकार प्राप्त सम्प्रदाय है। यह भारत तथा इंगलिस्तान दोनों का स्नेहपात्र हैं। वे एक उज्ज्वल सम्प्रदाय है; जहां भी वे हैं वे उन्नति करते हैं; वे सबसे कम साम्प्रदायिक हैं। वे बहुत विवेकशील तथा उज्ज्वल लोग हैं भारत में उन्हें कोई भय नहीं होना चाहिये, उन्हें तो उन्नति करना है। मैं पूछता हूं कि यदि वे इस योग्य हों तो उन्हें अधिक अनुदान या अधिक सहायता क्यों न दी जाये? अनुच्छेद में कहा गया है कि इस संविधान के आरम्भ से प्रथम तीन वर्ष तक संघ और प्रत्येक राज्य की ओर से वे ही अनुदान दिये जायेंगे। मैं पूछता हूं अधिक अनुदान क्यों नहीं यदि उनके छात्र अधिक अनुदान योग्य हों तो उतने ही अनुदान क्यों दिये जायें? मैं नहीं जानता कि आप इसे सहानुभूति कहते है क्या, यह गलत प्रकार की सहानुभूति है। मैं नहीं जानता कि मेरे माननीय और विवेकशील मित्र श्री एन्थानी उतने ही अनुदानों के लिये कैसे सहमत हैं। हो सकता है मूल्य बढ़ते जायें पर स्कूल के लड़कों को उतने ही अनुदान मिलें। अधिक क्यों नहीं? यह न कोई सहायता है और न रक्षा ही है। मैं अनुच्छेद को आगे पढ़कर सदन का समय नष्ट नहीं करना चाहता, उसमें लिखा है कि प्रत्येक तीसरे वर्ष दस प्रतिशत की कटौती हो जायेगी। हम कटौती की कल्पना ही क्यों करें? मेरा विचार तो यह है। ऐसे छोटे सम्प्रदाय को यदि आप सम्प्रदाय के रूप में, अल्पसंख्यक के रूप में स्वीकार करे जायेंगे तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि वह सम्प्रदाय अन्ततः घाटे में रहेगा। उन्हें अपने आप को समस्त राष्ट्र में विलय कर देने दीजिये और उन्हें किसी भी प्रकार के विभेद के बिना राष्ट्र का बन जाने दीजिये। उनका सौंदर्य और वर्ण का भेद ही उन्हें हमसे अलग पहचानने के लिये पर्याप्त है; वह अच्छी पहचान है। उन्हें अपने वर्ग के, अपने सौंदर्य के और अपने विवेक के आधार पर खड़ा होने दीजिए।

[श्री महावीर त्यागी]

उन्हें 'अल्पसंख्यक' आदि विशेषणों की क्या आवश्यकता है? यह तो उस सम्प्रदाय का अपमान है। यह सम्प्रदाय तो अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है और साहस के साथ खड़ा हो सकता है। इस सम्प्रदाय के सदस्य जिस मित्रतापूर्ण ढंग से व्यवहार कर रहे हैं, उसे देखते हुए मेरे ख्याल में यह कहना उनके सौजन्य का अपमान है कि उन्हें रक्षा की आवश्यकता है। उन्हें किसी चीज की आवश्यकता नहीं है। उनका व्यवहार ही उनकी रक्षा है। मेरे ख्याल में हमें उनको उस प्राकृतिक रक्षा पर छोड़ देना चाहिये जो भगवान ने उन्हें दी है। फिर, जब हमने एक बार यह विनिश्चय कर दिया है कि हम कोई अल्पसंख्यक या सम्प्रदाय को मान्यता नहीं देते, तो क्या यह ठीक है कि एक छोटे से सम्प्रदाय को मान्यता दी जाये? इससे वे बाकी सम्प्रदायों की ईर्ष्या के लक्ष्य बन जायेंगे। केवल थोड़ा सा धन ही प्रत्याभूत किया जा रहा है, पर इस छोटे से विशेषाधिकार के लिये वे अन्य छोटे सम्प्रदायों की ईर्ष्या, घृणा और जलन के कारण क्यों बनें? मेरे विचार में इतनी छोटी सी रियायत पाकर वे फलफूल नहीं सकेंगे, क्योंकि इससे जो हानि होगी वह कहीं अधिक होगी। और यदि सम्प्रदायों पर ही विचार करना है तो मेरा सुझाव है कि उस सम्प्रदाय पर ध्यान दिया जाये जो नया ही बना है—वह स्थानच्युत लोगों का सम्प्रदाय है। इन शरणार्थियों की रक्षा क्यों न की जाये जो कि बेघर हैं? हमें यह प्रत्याभूत कर देना चाहिये कि दस वर्ष तक उन्हें अमुक रियायतें मिलेंगी और वे ही वास्तव में ऐसा अल्पसंख्यक सम्प्रदाय है जो सहायता के योग्य है। आज प्रान्तों में किसी ने उन्हें कोई विशेषाधिकार या सहायता देने पर विचार नहीं किया क्योंकि वे हिन्दू हैं, किन्तु हिन्दू होने और धार्मिक बहुसंख्यक सम्प्रदाय में होने पर भी, आज भारत में बहुत दलित छोटे से अल्पसंख्यक हैं। यह दयनीय बात है कि एक वर्ष हो गया है पर उनके लिये कुछ नहीं किया गया है; और अब समय आ गया है कि उनकी रक्षा हमारा पहला ख्याल होना चाहिये था और हमें उनकी शिक्षा, निवासस्थान और अन्य अधिकारों की रक्षा करनी चाहिये थी। यदि इस संविधान में सम्प्रदायों पर विचार करना है, तो सर्वाधिक उत्पीड़ित सम्प्रदाय, जिस पर कि पहले विचार होना चाहिये, शरणार्थी हैं, किन्तु शरणार्थियों को तो सम्प्रदाय भी नहीं समझा जाता। और हम सम्प्रदायों को धार्मिक विभेदों अथवा रक्त विभेदों के अनुसार ही क्यों मानें? सम्प्रदाय तो एक जनवर्ग है जिस पर सामान्य रूप से कोई प्रभाव पड़ता हो—अच्छा या बुरा। चाहे कोई स्थिति हो, जो एक साथ समान परिस्थितियों से समानरूपेण प्रभावित हो वही सम्प्रदाय बन जाता है; और इस कारण यदि कोई सम्प्रदाय है जिसे रक्षा कवच या संरक्षण की आवश्यकता है तो वह शरणार्थी सम्प्रदाय है। किन्तु वे कभी हमारे समक्ष विशेष अनुदान मांगने नहीं आये। मेरा सुझाव है कि हमें इस अनुच्छेद को संविधान में नहीं रहने देना चाहिये। इसमें साम्प्रदायकिता के कीटाणु हैं। आप समस्त संविधान को इस रोग से मुक्त क्यों नहीं कर देते हैं और कीटाणुओं को क्यों रखते हैं? उनका विकास हो सकता है और फिर एक बार हमारे समक्ष साम्प्रदायिकता की एक और महान समस्या आकर खड़ी हो सकती है और मुस्लिम लीग के दिनों का वही पुराना इतिहास फिर दोहराया जा सकता है। मैं बलपूर्वक यह सुझाव देना चाहता हूं कि या तो इस अनुच्छेद पर भी विचार स्थगित कर दिया जाये या, यदि सदन या आप इसे आगे विचारार्थ स्थगित नहीं करना चाहते तो, मैं सदन से अनुरोध करूंगा कि इस अनुच्छेद को यहां ही और अभी ठुकरा दिया जाये,

और अपने दलों के निजी विनिश्चयों की चिन्ता न की जाये। हमें अपने दलों से स्वतंत्रता ले लेनी चाहिये और यह कह देना चाहिये कि यह एक भयानक वस्तु है, अतः यदि इसे रहने देंगे तो हम इस राजनैतिक जीवन को सदा के लिये व्याधियुक्त रहने देंगे। इन शब्दों के साथ मैं इस अनुच्छेद का विरोध करता हूं।

***श्री के.एम. मुंशी:** अध्यक्ष महोदय, मुझे विश्वास है कि ऐसे महत्त्वपूर्ण मामले पर हमें विगत की घटनाओं को समझना चाहिये और उस बहस को पुनः आरम्भ नहीं करना चाहिये जो कि कई स्थितियों में से गुजर चुकी है। जो दो धारायें विचाराधीन हैं वे बहुत लम्बे वाद-विवाद के फलस्वरूप निश्चित हुई थीं, और तदर्थ नियुक्त विशिष्ट समिति ने इनका सुझाव दिया था, मंत्रणा समिति ने इन्हें स्वीकार कर लिया था और अन्त में सदन ने भी स्वीकार कर लिया था। अब इतना सब कुछ होने के पश्चात् इससे कोई लाभदायक प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है कि उन तर्कों को दोहराया जाये जो कि सदन के कुछ विभागों ने भिन्न-भिन्न समयों पर पेश किये थे। सदन ने अल्पसंख्यक समिति के विनिश्चयों को सदा लगभग अन्तिम निर्णयों के रूप में स्वीकार किया है। हमें दो बातों के महत्व को समझना चाहिये जो कि मेरे मित्र श्री त्यागी ने कही है। जब सदन द्वारा यह विनिश्चय किया गया था तब सदन को एक इस बात पर भी विचार करना पड़ा था कि यह छोटा सा सम्प्रदाय पुरानी सरकार के रक्षा छत्र के नीचे ऐसी तरह रहा था कि इसके लिये अपने पैरों पर खड़ा होना असंभव है जब तक कि थोड़े से समय के लिये इसे रियायतों के रूप में चम्मच से दूध न पिलाया जाये। इसके 60 प्रतिशत से कुछ अधिक प्रौढ़जन कुछ खास सेवाओं में हैं। हमें इस स्थिति के विभिन्न कारणों पर जाने की आवश्यकता नहीं है, पर आकस्मिक परितर्वन से तो यह सम्प्रदाय तत्काल ही बेरोजगार हो जायेगा। दूसरी बात यह थी कि उनकी शिक्षा संस्थाओं को कुछ विशेष अनुदान दिये जाते थे। जैसा कि अब विभिन्न प्रान्तों में हमारे शिक्षा प्राधिकारी प्रमाणित कर रहे हैं, उन शिक्षा संस्थाओं में बहुत उच्चस्तर की शिक्षा दी जाती है और अब, जब कि वे शिक्षालय अन्य सम्प्रदायों के छात्रों को भी ले रहे हैं, कई प्रान्तीय सरकारों की नीति यह है कि वह उच्चस्तर सब शिक्षालयों में बनाये रखा जाये। उदाहरणार्थ बम्बई के आंग्ल-भारतीय विद्यालयों में 70 प्रतिशत विद्यार्थी आंग्ल-भारतीय नहीं हैं वरन् अन्य जातियों के हैं अतएव इन अनुच्छेदों पर सब दृष्टिकोणों से विचार किया गया था। वे एक सीमित कालावधि के लिये ही है। अतः सदन से मेरा अनुरोध है कि जो विनिश्चय काफी सोच विचार के बाद किया गया है उसमें मतदान द्वारा तो क्या ऐसे वाद-विवाद द्वारा भी कोई दखल नहीं देना चाहिये, जिसका देश में अच्छा प्रभाव शायद न पड़े। मुझे आशा है कि सदस्य यह समझ जायेंगे कि वाद-विवाद या आलोचना से शायद उस उदारता का मूल्य कम हो जायेगा जो कि बहुसंख्यक सम्प्रदाय ने इस छोटे से अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के प्रति दिखाई है।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं समझौते और मेल की भावना की बहुत सराहना करता हूं और जनता के किसी विभाग को दी गई सहायता पर मुझे ईर्ष्या नहीं है, पर मेरे सामने यही कठिनाई है कि मूलाधिकारों के अनुच्छेद 9 में लिखा है कि राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, नस्ल, जाति अथवा लिंग आदि के आधार पर विभेद नहीं करेगा। अब, राज्य निधि सारे नागरिकों की शिक्षा के लिये होती है। 'क' मुस्लिम सम्प्रदाय का है, 'ख' हिन्दू सम्प्रदाय का है और 'ग' पारसी या आंग्ल भारतीय सम्प्रदाय का है, अतः उन्हें शिक्षा और प्रशिक्षण के लिये प्रतिक्षण भिन्न

[श्री कृष्णचन्द्र शर्मा]

राशियां मिलेंगी, वे केवल इसीलिये भिन्न होंगी कि उनका धर्म या सम्प्रदाय भिन्न है, मेरा निवेदन है कि यह इस अनुच्छेद की भावना के विरुद्ध है। मुझे दूसरी बात यह कहनी है कि अनुदान तो संस्था को दिया जाना है। यह धनराशि इस आधार पर दी जा सकती है कि उस संस्था में शिक्षा का उच्चतर स्तर है, वह अधिक खर्चीली संस्था है अथवा ऐसे स्थान पर स्थित है कि साधारण अनुदान पर्याप्त नहीं होगा, आदि। अलीगढ़ के मुस्लिम विश्वविद्यालय या नैनीताल की आंग्ल-भारतीय शिक्षा संस्था को अधिक अनुदान देने का यह आधार हो सकता है। मुझे अनुदान पर कोई आपत्ति नहीं है पर उसका आधार युक्तियुक्त होना चाहिये।

एक और आपत्ति यह है कि ये विस्तार की छोटी-छोटी बातें हैं जो कि शिक्षा विभाग पर तथा विश्वविद्यालय पर छोड़ दी जानी चाहियें, और संसद द्वारा संविधान में नहीं रखी जानी चाहियें। मुझे ऐसी बात संसार के किसी संविधान में दिखाई नहीं देती और मैं नहीं समझता कि इसे यहां रखना वांछनीय होगा।

***माननीय सदस्यगण:** प्रश्न पर अब मत लिये जायें।

***अध्यक्ष:** मैं यह कह देना चाहता हूं कि वह अनुच्छेद अल्पसंख्यकों सम्बन्धी मंत्रणा समिति के विनिश्चयों के अनुसार और दलों में एक प्रकार के समझौते के फलस्वरूप पेश किया गया है। अत: मैं नहीं समझता कि जो विनिश्चय हो गया था उस पर पुन: वाद-विवाद करने की क्या आवश्यकता है। यह इस सभा के एक पिछले सत्र में भी पेश हुआ था और स्वीकृत हो गया था। अत: मैं नहीं समझता कि प्रश्न पर पुन: विचार करना अपेक्षित है।

प्रश्न यह है:

''कि अब प्रश्न पर मत लिये जायें।''

*प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।*

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 298 संविधान का अंग बनें।''

*प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।*

*अनुच्छेद 298 संविधान में जोड़ दिया गया।*

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 299 स्थगित रहेगा।

## अनुच्छेद 300

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि संशोधन सूची के संशोधन संख्या 3186 के निर्देश से, अनुच्छेद 300 के खंड (1) में, 'भाग 1' इस शब्द और अंक के पश्चात् 'और भाग 3' ये शब्द तथा अंक प्रविष्ट कर दिये जायें।''

***श्री एच.वी. ठक्कर** (सौराष्ट्र): श्रीमान्, मुझ प्रसन्नता है कि इस संशोधन से आदिमजातीय लोगों के कल्याण-कार्य के लाभ सब राज्यों को प्राप्त होंगे जहां भी वे इस समय रहते हों। आदिमजातीय लोगों का संविधान में अब पहली बार उल्लेख आया है। यदि ये लाभ केवल प्रान्तों के आदिमजातीय लोगों के लिये ही होते और देशी राज्यों के लिये नहीं होते तो यह काम अधकचरा ही रह जाता। किन्तु अब संशोधित रूप में यह समस्त पिछड़े हुए आदिमजातिय लोगों पर लागू होगा। अनुच्छेद 301 में उल्लिखित लाभ समस्त पिछड़े हुये लोगों के लिये हैं, और यह भी बड़ा कारण है कि अनुच्छेद 300 भी इसी प्रकार सब पर लागू हो।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मैं इस अनुच्छेद का हार्दिक समर्थन करता हूं। मैं उस समस्या की ओर ध्यान आकर्षित करूंगा जो कि आदिमजातीय क्षेत्रों में हमारे समक्ष उपस्थित हैं। वे देश में सर्वाधिक पिछड़े हुए लोगों में हैं। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें अलग रखना चाहा था और ईसाई प्रचारकों ने कभी-कभी उनका धर्म-परिवर्तन करने का प्रयत्न किया था। मैंने उनमें से कुछ लोगों को देखा है और मैं कह सकता हूं कि वे एक प्रकार का अर्धमानवों का सा और दु:खद जीवन व्यतीत करते हैं। इस अनुच्छेद का उद्देश्य ऐसे उपायों और साधनों को निश्चित करना है जिससे कि उन्हें सामान्य स्तर पर लाया जा सके। उनके विषय में सर्वप्रथम लोगों का ध्यान तब गया था जबकि 1931 में ब्रिटिश सरकार ने उन्हें पृथक प्रतिनिधित्व देना चाहा। सुधारक निकायों ने और हमारे सम्मानीय ठक्कर बापा ने उनके बीच काम किया है किन्तु अभी काफी काम बाकी है और हमें देखना चाहिये कि उन लोगों को समाज में उनका उचित स्थान दिलाया जा सके।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान्, अनुसूचित क्षेत्रों की सहायता करने की दृष्टि से यह अनुच्छेद बहुत अधूरा है। इसमें तो इतना ही लिखा है कि समय-समय पर या जब कि राष्ट्रपति चाहे एक आयोग नियुक्त हो सकता है जो इन क्षेत्रों की अवस्थाओं के बारे में पड़ताल करेगा और प्रतिवेदन देगा, और ''संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार ऐसे किसी राज्य को उस प्रकार के निदेश देने तक होगा जो उस राज्य की अनुसूचित आदिमजातियों के कल्याण के लिये निदेश में परमावश्यक बताई हुई योजनाओं के बनाने और कार्यान्वित करने से सम्बन्ध रखते हों।'' मुझे आश्चर्य है कि इसमें क्या सांविधानिक बात है। हम संविधान में अनुसूचित क्षेत्रों का उल्लेख करके उसे भारी क्यों बनायें? वे पिछड़े हुए क्षेत्र हैं अब तक राज्य उन्हें जानबूझ कर पिछड़ा हुआ रखता रहा है और इन क्षेत्रों में कोई विशेष उन्नति नहीं हुई है। मेरे निर्वाचन क्षेत्र का आधा भाग अंशत: अपवर्जित क्षेत्र है, जिसे जौनसार बावर कहते हैं। मैं जानता हूं कि इन क्षेत्रों में क्या हालत है। कई वर्षों पहले समितियां नियुक्त हुई थी जिन्होंने उनकी हालत देखी। पर हालत देखना तो कोई काम नहीं है। असली काम तो हालत सुधारने का है। हालत सुधारने के मामले में यह अनुच्छेद कुछ नहीं कहता। इससे तो आशा की किरण भी दृष्टि नहीं पड़ती कि क्या किया जायेगा। यह जानने के लिये कि वहां क्या हालत है एक आयोग नियुक्त होगा। यह काफी नहीं है। इस अनुच्छेद को तो संविधान से हटा दिया जाता तो ही ठीक रहता क्योंकि इससे अनुसूचित क्षेत्रों को वुछ भी सहायता नहीं मिलती। इस अनुच्छेद में कुछ भी काम करने की बात नहीं है। संघ को आयोग नियुक्त करने का प्राधिकार न भी हो तब भी आयोग नियुक्त

[श्री महावीर त्यागी]

हो सकते हैं। आयोग या समितियां नियुक्त करने से अथवा पड़ताल करने से उन्हें कौन रोक सकता है? अत: मेरे विचार में इस अनुच्छेद में कोई काम की बात नहीं है। यदि इन शब्दों या पंक्तियों में कोई महत्त्वपूर्ण बात है या कोई आशा छिपी हुई है, तो मैं चाहता हूं कि मस्विदा समिति के सभापति महोदय उसे प्रकाश में लायें, जिससे कि इन क्षेत्रों में रहने वाले लोग भी यह जान सकें कि इन पंक्तियों की आड़ में उनके लिये क्या सुन्दर भविष्य छिपा हुआ है। मुझे तो उनके लिये कोई आशा दिखाई नहीं देती। मैंने इसी विचार से यह प्रश्न उठाया है कि जिससे डा. अम्बेडकर या उनकी ओर से कोई व्यक्ति आदेश में आ जायें और हमें यह बतायें कि यहां अनुसूचित क्षेत्रों को लाने का क्या अर्थ है और इससे क्या आशा पैदा होती है। यदि इसमें कुछ नहीं है और यदि उनका उल्लेख ही करना है, तो मैं यह अच्छा समझता हूं कि यह अनुच्छेद हटा दिया जाये।

***अध्यक्ष:** डा. अम्बेडकर, क्या आप कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** नहीं, श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 3186 के निर्देश से, अनुच्छेद 300 के खंड (1) में 'भाग 1' इस शब्द और अंक के पश्चात् 'और भाग 3' ये शब्द और अंक रख दिये जायें।''

*संशोधन स्वीकृत हो गया।*

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 300 संविधान का अंग बने।''

*प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।*

*संशोधित रूप में अनुच्छेद 300 संविधान में जोड़ दिया गया।*

## अनुच्छेद 301

*(संशोधन संख्या 3187 और 3190 पेश नहीं किये गये।)*

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मैं संशोधन संख्या 3191, 3195, 3196, 3197, 3198 और 3200 को पेश करता हूं जो मेरे नाम में है।

मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 301 के खंड (1) में, 'consisting of such persons as he thinks fit' ये शब्द हटा दिये जायें।''

मेरे विचार में ये शब्द बिल्कुल बेकार हैं मैं तो यहां तक कह सकता हूं कि वे राष्ट्रपति के विवेक पर भी कटाक्ष के रूप में है। जब राष्ट्रपति कुछ लोगों को नियुक्त करता है तो वह नि:संदेह ऐसे ही लोगों को नियुक्त करता है जिन्हें वह उस काम के लिये

ठीक समझता है जिसका भार वह उस पर डालता है। यह कहना सर्वथा व्यर्थ और निरर्थक है 'कि वह ऐसे व्यक्तियों को मिला कर, जैसे वह उचित समझे, आयोग बना सकेगा।' केवल यही कहना काफी है कि वह आयोग बना सकेगा। इससे पर्याप्त रूप में वह अर्थ निकल जाता है जो कि अनुच्छेद के इस भाग का उद्देश्य है।

तत्पश्चात्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 301 के खंड (1) में 'difficulties' शब्द के स्थान पर 'disabilities' यह शब्द रख दिया जाये।''

अब तक हमने सदन में जो कुछ बातें स्वीकार की हैं उन्हें ध्यान में रखते हुए, मेरा ख्याल है कि 'difficulties' शब्द के स्थान पर 'disabilities' शब्द से विचार अधिक स्पष्ट होता है। यदि हम मूलाधिकार के अध्याय को देखें तो हमें पता लगता है कि अनुच्छेद 9 के दूसरे भाग में 'निर्योग्यता, दायित्व, निर्बन्ध, शर्त' आदि की चर्चा है। उस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद में, जो कि धर्म, मूलवंश, जाति या लिंग के आधार पर विभेद को समाप्त करता है, कहीं भी 'कठिनाई' शब्द नहीं आता। मेरे विचार में 'कठिनाई' शब्द मुश्किल से ही सांविधानिक शब्द है। मैंने संसार के कई संविधान पढ़े हैं, पर मैं देखता हूं कि यह सांविधानिक शब्दावली या भाषा में कहीं नहीं है। 'निर्योग्यता' शब्द 'कठिनाई' शब्द से कहीं ज्याादा उपयुक्त है। मुझे विश्वास है कि डा. अम्बेडकर, जो कि सांविधानिक ज्ञान में बहुत ही पारंगत हैं, इस संशोधन को स्वीकार करने में कोई कठिनाई अनुभव नहीं करेंगे।

मैं अपना अगला संशोधन पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 301 के खंड (1) में, 'grants should be given' इन शब्दों के स्थान पर 'grants should be made' ये शब्द रख दिये जायें।

यह केवल शाब्दिक संशोधन है मैं इस पर जोर नहीं देना चाहता, वरन् मैं इसे मस्विदा समिति के संयुक्त विवेक पर छोड़ देता हूं जो कि, मुझे विश्वास है, समुचित समय पर प्रयुक्त होगा।

तत्पश्चात् मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 301 के खंड (1) में, 'और' शब्द (पंक्ति 10 में) के स्थान पर 'as well as' ये शब्द रख दिये जायें।''

सदन के समक्ष अनुच्छेद का वह भाग इस प्रकार है:

''The President may by order appoint a Commission.....to remove such difficulties and to improve their condition and as to the grants that should be given for the purpose by the Union or any State and the conditions subject to which such grants should be given.....''

मेरे विचार में 'as well as' यह पद अकेले शब्द 'and' से अधिक ठीक-ठीक इसके अर्थ को व्यक्त करेगा। यह भी मैं बुद्धिमान लोगों की टोली के विवेक पर छोड़ देता हूं जो कि इस सदन ने संविधान का मस्विदा बनाने के लिये नियुक्त किये हैं।

[श्री एच.वी. कामत]

मैं अपने अगले संशोधन संख्या 3198 को भी पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 301 के खंड (2) में, 'a report setting out the facts as found by them and' इन शब्दों के स्थान पर 'a report thereon' ये शब्द रख दिये जायें।''

इस समय खंड इस प्रकार है:

''A Commission so appointed shall investigate the matters referred to them and present to the President a report setting out the facts as found by them and making such recommendations as they think proper.''

यदि मेरा संशोधन सदन में स्वीकृत हो जाये तो खंड इस प्रकार बन जायेगा:

''A Commission so appointed shall investigate the matters referred to them and present to the President a report thereon making such recommendations as they think proper.''

इसका यही उद्देश्य है कि उलझी हुई भाषा और शैली न रखी जाये और संक्षिप्तता हो तथा ठीक-ठीक अर्थ निकले, किन्तु किसी सारवान आशय का बलिदान न हो।

अन्त में मैं अपना संशोधन संख्या 3200 पेश करता हूं जो इस प्रकार है:

''That in clause (3) of article 301, the words 'together with a memorandum explaining the action taken thereon' be deleted and the following words be added at the end:

'for such further action as may be necessary.' ''

इस समय इस अनुच्छेद का खंड इस प्रकार है:

''The President shall cause a copy of the report so presented, together with a memorandum explaining the action taken thereon to be laid before Parliament.''

मेरे संशोधन का उद्देश्य इसका रूपभेद करना है और यदि यह सदन द्वारा स्वीकृत हो जायेगा, तो खंड इस प्रकार बन जायेगा:

''The President shall cause a copy of the report so presented to be laid before Parliament for such further action as may be necessary.''

यह रचना सम्बन्धी संशोधन है और सारवान संशोधन भी है। इसके दो भाग हैं। पहले भाग में उस तरीके का उल्लेख है जिससे कि राष्ट्रपति इस प्रतिवेदन की एक प्रति संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखवायेगा। इस समय इस खंड में राष्ट्रपति के लिये अनिवार्य कर दिया गया है कि वह संसद के समक्ष रखी जाने वाली प्रति के साथ एक ज्ञापन लगा दे। यह बुद्धिमानी दिखाई नहीं देती कि उस तरीके का भी उल्लेख कर दिया जाये जिससे कि राष्ट्रपति संसद के समक्ष प्रतिवेदन रखेगा। यदि राष्ट्रपति उस प्रतिवेदन के साथ ज्ञापन पेश करना आवश्यक समझेगा तो वह निःसंदेह पेश कर देगा। राष्ट्रपति विवेकशील व्यक्ति होगा। मुझे विश्वास है कि हमारा राष्ट्रपति ऐसा व्यक्ति नहीं होगा जो कि बुद्धिमान न हो अथवा जो राष्ट्र के हित में अपना कर्त्तव्य करने में अक्षम हो। यदि राष्ट्रपति प्रतिवेदन के साथ ज्ञापन लगाना आवश्यक समझेगा तो वह लगा देगा। हम संविधान में ऐसी छोटी-छोटी बातें क्यों रखें? यह कहना तो बहुत ही तुच्छ बात है कि उसे प्रतिवेदन के साथ ज्ञापन भी लगाना होगा। मेरे संशोधन का यह पहला पहलू है।

मेरे संशोधन के दूसरे भाग का सम्बन्ध इस बात से है कि आयोग के इस प्रतिवेदन को राष्ट्रपति द्वारा संसद में पेश किये जाने का परिणाम क्या हो? मेरे विचार में, श्रीमान्, इस बात पर सदन सहमत है कि संसद को, भारत की हमारी सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न संसद को इस बात का निश्चय करने का काफी अधिकार होगा कि हमारे देश के सामाजिक रूप में और शिक्षा में पिछड़े हुए वर्गों के कल्याणार्थ क्या कार्यवाही की जाये या क्या नीति अपनाई जाये। इस अनुच्छेद का सम्बन्ध भारतीय संघ के सामाजिक रूप में और शिक्षा में पिछड़े हुए वर्गों से है। मुझे विश्वास है कि संसद को यह कहने का अधिकार होगा कि पिछड़े हुए लोगों के कल्याणार्थ जो कार्यवाही की जाये वह संसद द्वारा सूत्रित नीति के अनुकूल हो। अतः मैं चाहता हूं कि इसे क्रियान्वित करने के लिये जब वह प्रतिवेदन संसद के समक्ष आये, तब आगे की कार्यवाही संसद करे और राष्ट्रपति न करे। यदि आवश्यक हो तो राष्ट्रपति उस प्रतिवेदन पर अपनी प्रतिक्रिया संसद को पहुंचा सकता है, पर उस पर कार्यवाही करने का अन्तिम प्राधिकारी वह नहीं होना चाहिये। उस प्रतिवेदन पर क्या कार्यवाही की जाये इस मामले में अन्तिम बात संसद को ही कहनी चाहिये। अतः मेरा यह अन्तिम संशोधन इस बात को बिल्कुल स्पष्ट और पूर्णतः संदेहहीन बना देना चाहता है, जैसा कि डा. अम्बेडकर कह सकते हैं, और राष्ट्रपति के लिये यह असंभव हो जाता है कि वह संसद को इस जन्मजात अधिकार से वंचित कर सके कि राष्ट्रपति द्वारा प्रस्तुत की गई आयोग की रिपार्ट पर वह कार्यवाही करेगी। अतः मैंने इन शब्दों के रखने का सुझाव दिया है ''for such further action as may be necessary'। हो सकता है कि दस वर्ष पश्चात् हमारे देश में कोई भी ऐसे वर्ग न रहें जो कि सामाजिक रूप में या शिक्षा में पिछड़े हुए हों। मैं तो आशा करता हूं कि वह दिन दस वर्ष से पहले ही आ जायेगा। हमारे समक्ष सोवियत रूस का उदाहरण है। रूस ने दस पंद्रह वर्ष में निरक्षरता का अन्त कर दिया और जनता के निम्नतर लोगों को भी काफी उच्च स्तर पर ले आया। क्या हम अपनी प्राचीन महानता और अपने सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान की पृष्ठभूमि के होते हुए यह आकांक्षा नहीं रख सकते कि हम उससे अच्छा काम करके दिखायेंगे और दस वर्ष से भी कम समय में इन सब पिछड़े हुए वर्गों को सामाजिक रूप में और

[श्री एच.वी. कामत]

शिक्षा में ऊंचे स्तर पर ले आयेंगे? मुझे आशा है, श्रीमान्, कि हम दस वर्ष के भीतर ही इन पतित और तथाकथित् पिछड़े हुए लोगों का उद्धार करने में बहुत आगे बढ़ सकेंगे और हमें प्रतिवेदन देने के लिये आयोग नियुक्त करने की कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। यदि वह दिन दस वर्ष से कम समय में ही आ जाये, तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी। किन्तु, इस समय तो, संविधान में आयोग बनाने का उपबन्ध है। तो फिर आयोग द्वारा राष्ट्रपति को पेश किये गये प्रतिवेदन पर संसद को विचार करने दीजिये और इस मामले में संसद को ऐसी कार्यवाही करने दीजिये जो कि वह उपयुक्त या अपेक्षित समझे, जिससे कि दस वर्ष की ही कालावधि में, जब कि एक आयोग नियुक्त हो चुका हो और उसका प्रतिवेदन संसद के समक्ष आये, तो संसद इन शिक्षा में पिछड़े हुए लोगों के उत्थान और उद्धार के लिये योजना बना सके और उसे कार्यान्वित कर सके। मुझे विश्वास है कि पहले दस-वर्षीय अवधि की समाप्ति के पश्चात् संसद के लिये इस प्रकार का आयोग नियुक्त करने की आवश्यकता नहीं रहेगी जो कि हमारे देश के पिछड़े हुए वर्गों की स्थिति की पड़ताल करे। श्रीमान्, मैं इन विविध संशोधनों को पेश करता हूं और उन्हें सदन की स्वीकृति के लिये रखता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 301 के खंड (3) में, 'संसद' शब्द के स्थान पर 'संसद का प्रत्येक सदन' ये शब्द रख दिये जायें।''

***अध्यक्ष:** दो संशोधन हैं जिनकी सूचना पंडित ठाकुरदास भार्गव ने दी है, वे हैं प्रथम सूची के संख्या 180 और 181।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** मैं संशोधनों को पेश नहीं करना चाहता किन्तु मैं अनुच्छेद पर बोलना चाहता हूं।

*(संशोधन संख्या 3192, 3193, 3194, 3199 और प्रथम सूची की संख्या 181 पेश नहीं किये गये।)*

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद और संशोधनों पर अब वाद-विवाद हो सकता है।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** श्रीमान्, मैं समझता हूं कि अनुच्छेद 301 संविधान के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अनुच्छेदों में से है। मुझ पर छोड़ दिया जाये तो मैं इसे संविधान की आत्मा कहूंगा। जहां तक पीड़ित जातियों का सम्बन्ध है हमने उनके लिये कुछ स्थान ही रक्षित किये हैं शेष काम हमने नहीं किया है और अनुच्छेद 301 का उद्देश्य उन्हें सामान्य स्तर पर लाने के कार्य को पूरा करना है। यह अनुच्छेद समस्त राष्ट्र का यह कर्त्तव्य निश्चित करता है कि वह देखे कि पीड़ित वर्गों की सब निर्योग्यतायें और कठिनाइयां दूर हो जायें, और इसलिये यह वास्तव में पिछड़ी हुई जातियों की स्वतंत्रता का घोषणा-पत्र है, और एक प्रकार से यह सदन की शपथ है, यह शपथ है कि आगामी वर्षों में ही वे सारी सुविधायें देंगे, जो भी सुविधायें राष्ट्र द्वारा दी जा सकती हैं, और इस प्रकार अपने पिछले

पापों को धोयेंगे। अब, श्रीमान्, इस देश में पिछड़ी हुई जातियां हैं जिनमें से कुछ को प्रतिनिधित्व के विषय में स्थान-रक्षण मिल गया है, किन्तु अन्य वर्गों को स्थान-रक्षण नहीं मिला है पर वे भी उतने ही पिछड़े हुए हैं। इसलिये मैं चाहता था कि सब पिछड़े हुए वर्गों की, जिसमें दलित वर्ग भी सम्मिलित हों, एक पंजी बनाई जाती और बाद में आयोग यह मालूम करता कि उनकी निर्योग्यतायें तथा कठिनाइयां क्या हैं और इन पिछड़े हुए वर्गों के प्रत्येक सदस्य को सुविधायें प्रदान करने के लिये एक योजना बनाई जाती। यदि कोई वर्ग विशेष आर्थिक रूप में बहुत पिछड़ा हुआ हो तो गांवों में उनके मकानों के विषय में उपबन्ध कर दिया जाता, उन्हें केवल निवास सम्बन्धी अधिकार ही नहीं वरन् अपनी जायदादों को हस्तान्तरित करने का भी अधिकार दिया जाता। यदि आयोग द्वारा उनकी निर्योग्यताओं की पड़ताल करने के पश्चात् हम कोई योजना बनायें तो यह उनकी निर्योग्यताओं को दूर करने में एक महान् कदम होगा। उनके सम्बन्ध में बहुत सी निर्योग्यतायें हैं जिनका सदन को ज्ञान है और इस समय मुझे उनका वर्णन करने की अपेक्षा नहीं है। मैं तो यही कहना चाहता हूं कि जहां तक इन वर्गों का सम्बन्ध है, हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि सामान्य स्तर पर आने के पश्चात् वे वर्ग पिछड़े हुए वर्गों की श्रेणी में ही न रहें जिससे कि उनका पिछड़ापन निश्चित और स्थायी न बन जाये। जब वे सामान्य स्तर पर पहुंच जायें तब उन्हें इस श्रेणी से हटा दिया जाये। यदि कोई जाति सामाजिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक रूप में पिछड़ी हुई रहती है, तो फिर दस-पंद्रह वर्ष का कोई प्रश्न नहीं होना चाहिये, बल्कि जब तक वे सामान्य स्तर पर न ले आया जायें तब तक उन्हें सुविधायें देते रहना चाहिये।

मेरा अगला निवेदन यह है कि अनुच्छेद में लिखा है ''राष्ट्रपति आदेश द्वारा..... नियुक्त कर सकता है, आदि'। मैंने इस सम्बन्ध में एक संशोधन भेजा है कि 'may' (कर सकता है) शब्द के स्थान पर 'shall' (करेगा) यह शब्द रख दिया जाये, और यदि 'may' शब्द ही प्रयुक्त हो, तब भी मेरे विचार में ऐसा आयोग नियुक्त करना राष्ट्रपति के लिये बाध्यकारी होना चाहिये। चाहे 'may' शब्द रहे पर उसका अर्थ 'shall' के समान समझा जाये। अतः मुझे संदेह नहीं है कि राष्ट्रपति ऐसा आयोग नियुक्त करेगा और वह आयोग इन वर्गों की स्थितियों की पड़ताल करने के पश्चात् यह सुझाव देगा कि किस उपाय विशेष द्वारा उसके सुझाये गये तरीकों को कार्यान्वित किया जाये। यहां तो अनुच्छेद में केवल यही लिखा है कि वह प्रतिवेदन की एक प्रति संसद के समक्ष रखवायेगा। अनुच्छेद 301 में संसद के कर्त्तव्य नहीं लिखे हैं। मुझे ख्याल है कि उनके लिये 299 में उपबन्ध है, जोकि स्थगित रखा गया है। इस समय मैं उस अनुच्छेद पर बोलना नहीं चाहता, पर मैं तो यह निवेदन करना चाहता हूं: अब अल्पसंख्यकों के रक्षणकवच हटा दिये गये हैं, जैसे कि मुसलमानों और सिखों के। संसद का उत्तरदायित्व केवल पिछड़े हुये वर्ग और अनुसूचित जातियां ही हैं। इन वर्गों के सम्बन्ध में विशेष अधिकारी नियुक्त होंगे जो यह देखेंगे कि आया उन्हें इस संविधान के अधीन प्रदत्त मूलाधिकार, और आयोग द्वारा पड़ताल के बाद उनको दी गई सुविधाओं का ये लोग उपभोग करते हैं या नहीं। ये वर्ग केवल केन्द्रीय का ही नहीं प्रत्युत राज्यों के विधान मंडलों का भी उत्तरदायित्व है। यह अनुच्छेद 301 तो लक्ष्यमूलक प्रस्ताव का कार्यरूप ही है। इस अनुच्छेद में तो केवल यह उपाय दिया हुआ है जिससे कि लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव को कार्यान्वित किया जा सके। हमें इस अनुच्छेद में यह उपबन्ध

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

रख देना चाहिये कि यह केवल उन्हीं जातियों पर लागू नहीं होगा जिनके लिये स्थान-रक्षण रख दिया गया है, अपितु उन पर भी लागू होगा जिनके लिये कि स्थान-रक्षण तो नहीं रखा गया है पर जोकि पिछड़ी हुई है।

मुझे अनुच्छेद 301 का समर्थन करने में बहुत हर्ष का अनुभव हो रहा है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, मैं इस अनुच्छेद का हार्दिक समर्थन करता हूं। मैं इस सम्बन्ध में केवल दो बातें बताना चाहता हूं। पहली बात यह है कि इस संविधान की योजना के अनुसार, यह आयोग इस संविधान के प्रारम्भ पर ही नियुक्त हो जायेगा। इसका यह अर्थ है कि ज्योंही यह संविधान लागू होगा, त्योंही राष्ट्रपति एक आयोग नियुक्त करेगा जोकि सामाजिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक रूप में पिछड़े हुए वर्गों की हालत का पता लगायेगा और तत्पश्चात् यह प्रतिवेदन देगा कि उनके पिछड़ेपन को कैसे हटाया जाये। हम संविधान में कई स्थानों पर 'पिछड़े हुए वर्ग' इस पद का प्रयोग कर रहे हैं, किन्तु हमने संविधान में कहीं भी इस पद की परिभाषा नहीं की है। मुझे आशा है कि यह आयोग, जोकि देश भर में पिछड़े हुए वर्गों की हालत का खास अध्ययन करेगा, हमें यह बता सकेगा कि 'पिछड़े हुए वर्गों' पद का क्या आशय है। जब यह आयोग संसद को प्रतिवेदन देगा, तब मुझे आशा है कि वे अपनी रिपोर्ट में 'पिछड़े हुए वर्ग' और 'दलित वर्ग' इन पदों की परिभाषा कर देंगे।

मैं श्री कामत के इस संशोधन का भी समर्थन करता हूं कि 'for such further action as may be necessary' ये शब्द जोड़ दिये जायें। इसका अर्थ यह है कि जब प्रतिवेदन आ जाये, तब संसद को इन लोगों के पिछड़ेपन को दूर करने के उपायों और साधनों पर विचार करना चाहिये। अत: मेरे विचार में यह संशोधन आवश्यक है।

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा:** श्रीमान्, अब प्रश्न पर मत लिये जायें।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि प्रश्न पर मत लिये जायें।''

*प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।*

***अध्यक्ष:** मुझे अब विविध संशोधनों पर मत लेने हैं।

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा:** यदि कोई और कार्य न हो तो सदन को स्थगित कर दिया जाये।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 301 के खंड (1) में, 'consisting of such persons as he thinks fit' ये शब्द हटा दिये जायें।''

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 301 के खंड (1) में 'difficulties' शब्द के स्थान पर 'disabilities' शब्द रख दिया जाये।''

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***अध्यक्ष:** मेरे विचार में संशोधन संख्या 3196 और 3197 रचना सम्बन्धी हैं। उन्हें छोड़ देना अच्छा होगा। प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 301 के खंड (2) में, 'a report setting out the facts as found by them and' इन शब्दों के स्थान पर 'a report thereon' ये शब्द रख दिये जायें।''

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 301 के खंड (3) में, 'together with a memorandum explaining the action taken thereon' ये शब्द हटा दिये जायें और अन्त में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'for such further action as may be necessary.' ''

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 301 के खंड (3) में 'Parliament' (संसद) शब्द के स्थान पर 'each House of Parliament' (संसद का प्रत्येक सदन) ये शब्द रख दिये जायें।''

*संशोधन स्वीकृत हो गया।*

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 301 संविधान का अंग बने।''

*प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।*

*संशोधित रूप में अनुच्छेद 301 संविधान में जोड़ दिया गया।*

***अध्यक्ष:** अब वे सब अनुच्छेद समाप्त हो गये हैं जो हमने आज विचारार्थ रखे थे। एक अनुच्छेद पर जो हमने स्थगित कर दिया था, अनुच्छेद 289 पर विचार करना शेष है। उस पर कुछ संशोधन थे और कुछ सदस्यों ने कहा था कि उन्हें अचानक पेश किया गया था और वे इस पर विचार करने के लिये समय चाहते थे। यदि सदन की इच्छा हो तो हम मध्याह्नान्तरीय सत्र कर सकते हैं जिससे कि हमें कल न बैठना पड़े।

***एक माननीय सदस्य:** हम इस पर अभी विचार करने के लिये तैयार हैं।

***अध्यक्ष:** छ: बजे।

***श्री के.एम. मुन्शी:** कल के लिये बैठक नहीं रखनी चाहिये क्योंकि, मुझे पता है, कुछ सदस्यों ने जाने के लिये स्थान रक्षित करवा लिये हैं।

***अध्यक्ष:** इसीलिये तो मैं 6 बजे का सुझाव दे रहा हूं।

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा:** या तो हम इसे स्थगित कर दे या आप सायंकाल एक अधिवेशन करके इसे समाप्त कर दीजिये।

***अध्यक्ष:** मेरे ख्याल में कुछ सदस्य यह अनुभव करते हैं कि उन्हें संशोधनों पर विचार करने के लिये समय मिलना चाहिये और इसलिये उन्हें समय देना कहीं अच्छा रहेगा और यदि आप सहमत हों तो मैं संध्या को 6 बजे तक मध्याह्नान्तरीय अधिवेशन करना चाहता हूं।

***माननीय सदस्यगण:** छ: बजे।

***अध्यक्ष:** अत: सदन आज सायंकाल के छ: बजे तक के लिये स्थगित रहेगा।

*तत्पश्चात् सभा मध्याह्नान्तर के 6 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।*

---

*संविधान सभा, मध्याह्नान्तर में 6 बजे, अध्यक्ष महोदय (माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में पुनर्समवेत हुई।*

---

## संविधान का प्रारूप—(*जारी*)

## अनुच्छेद 289—(*जारी*)

***अध्यक्ष:** अब हम उस संशोधन को लेते हैं जोकि डा. अम्बेडकर ने प्रात:काल पेश किया था। मेरे ख्याल में मूल अनुच्छेद पर, जोकि डा. अम्बेडकर ने पेश किया था, यही एक संशोधन है।

मेरे पास अभी-अभी दो सदस्यों, श्री महावीर त्यागी तथा श्री जसपतराय कपूर के संशोधनों की सूचना आई है। मुझे पता नहीं है कि ये संशोधन इस समय कैसे आ गये हैं। वे संशोधन पर संशोधन नहीं हो सकते; वे केवल संशोधनों के संशोधनों पर संशोधन हो सकते हैं। मैं संशोधनों के संशोधनों पर संशोधनों की अनुमति देना नहीं चाहता।

***श्री जसतपराय कपूर** (संयुक्तप्रांत : जनरल): तो क्या श्रीमान्, मुझे अनुमति है कि मैं इस संशोधन में निहित अपने दृष्टिकोण को पेश कर सकूं या व्यापक वाद-विवाद के समय ही पेश कर सकूं?

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद और संशोधन पर वाद-विवाद होगा। कोई भी सदस्य जो चाहे कह सकता है। उसे अधिकार है कि वह अपने कथनानुसार मत दे या अन्यथा।

***श्री महावीर त्यागी:** क्या मैं निवेदन कर सकता हूं, श्रीमान्, कि यदि किसी समय कोई गंभीर असंगति पाई जाये और बता दी जाये तो मुझे आशा है कि उस पर अवश्य ध्यान दिया जाना चाहिये।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार में आपका संशोधन उसके अन्तर्गत नहीं आता। आपके मामले में, आपने जो संशोधन भेजा है वह ऐसी बात के बारे में नहीं है जो अभी पाई गई हो।

***श्री महावीर त्यागी:** मैं समझ नहीं सका, श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** आपका संशोधन यह है: कि प्रस्तावित अनुच्छेद 289 के खंड (1) में, 'and Vice-President' ये शब्द हटा दिये जायें। अर्थात् आप उपराष्ट्रपति के निर्वाचन को निर्वाचन आयोग के क्षेत्राधिकार से बाहर रखना चाहते हैं।

***श्री महावीर त्यागी:** हां, श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें वाद-विवाद के फलस्वरूप कोई ऐसी बात पाई गई हो और उससे कठिनाई उत्पन्न हो गई हो और यह संशोधन आवश्यक हो गया हो। यह बात तो पहले सोची जा सकती थी और यदि आप संशोधन की सूचना देना चाहते थे तो आपको पहले देनी चाहिये थी। मैं इसकी अनुमति अब नहीं दे सकता।

***श्री एच.वी. कामत:** क्या मैं प्रार्थना कर सकता हूं, श्रीमान्...

***अध्यक्ष:** मैंने श्री त्यागी के संशोधन पर निर्णय दे दिया है। अब मैं दूसरे संशोधन को लेता हूं।

***श्री एम.वी. कामत:** कम से कम भविष्य के लिये क्या मैं जान सकता हूं, श्रीमान्, कि संशोधनों के संशोधनों पर संशोधनों के संबंध में क्या स्थिति है?

***अध्यक्ष:** मैं भविष्य के लिये कोई वचन नहीं दूंगा। मैं प्रत्येक मामले को, जब वह उठेगा, निबटा दूंगा।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं जानना चाहता हूं कि नियम क्या है, श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** सदस्य महोदय निश्चित रहें, मैं नियमों का अनुसरण करूंगा।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं इस पर उत्तर नहीं मांग रहा हूं। इस विषय पर क्योंकि नियमों में कुछ नहीं है, अत: मैं जानना चाहता हूं, कि संशोधनों के संशोधनों पर संशोधनों के संबंध में क्या स्थिति है?

***अध्यक्ष:** जैसा कि मैं कह चुका हूं मैं प्रत्येक मामले का, जबकि वह उठेगा, विनिश्चय करूंगा।

श्री जसपतराय कपूर के संशोधन का जहां तक संबंध है, वे उस पर बोल सकते हैं। अनुच्छेद और संशोधन पर बहस हो सकती है।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रांत तथा बरार : जनरल): क्या मैं जान सकता हूं श्रीमान्, कि वाद-विवाद केवल संशोधन पर ही होगा या अनुच्छेद पर भी?

***अध्यक्ष:** सब चीज पर।

***श्री जसपतराय कपूर:** अध्यक्ष महोदय, यदि मैं अनुच्छेद 289 के संबंध में संशोधन संख्या 99 पर बोलने खड़ा हुआ हूं तो इसका यह मतलब नहीं है कि मुझे बहुत बार बोलने का शौक है। जब मैं मंच पर आ रहा था तो मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर ने मुझे यह सुझाव दिया कि आज दर्शकगण नहीं हैं, और मुझे इस अनुच्छेद पर बोलने के लिये अधिक उत्सुक होने की आवश्यकता नहीं है। मैं अपने माननीय मित्र डा. अम्बेडकर को आश्वासन देता हूं कि मैं कभी भी दर्शकों के लिये या पन्नों में ख्याति प्राप्त करने के लिये नहीं बोलता। मैं तो केवल तभी बोलता हूं जबकि मुझे बोलना सर्वथा आवश्यक प्रतीत होता है और इस अवसर पर, श्रीमान्, मेरी यही भावना है और इसीलिये मैं आपके समक्ष अनुच्छेद 289 पर बोलने के लिये आया हूं।

मुझे यह मानना पड़ेगा, श्रीमान्, कि इस अधिवेशन के अन्तिम दिन अनुच्छेद 289 कुछ असुविधाजनक सिद्ध हुआ है। कल इस पर लम्बी बहस हुई है और आज मैं देखता हूं कि इस पर जितनी बहस होती है, इसमें उतनी ही त्रुटियां दिखाई देती हैं और मैं देखता हूं कि इस पर हम जितनी बार गौर करते हैं उतनी ही इसकी त्रुटियां प्रकाश में आती हैं। इस अनुच्छेद पर ध्यान से विचार करने पर मैं देखता हूं कि इसकी तो सारी रचना को ही फिर से बदलना आवश्यक है। यहां वहां थोड़े से संशोधन, थोड़े से परिवर्तन या अदलबदल पर्याप्त नहीं होंगे: इसकी तो पुनर्रचना ही आवश्यक है। मेरा यह सुझाव नहीं है कि इसकी पुनर्रचना इसलिये आवश्यक है कि उन लोगों की बात को पूरा किया जाये जोकि केन्द्र को निर्वाचन करने की शक्ति नहीं देना चाहते। मैं यह मानता हूं कि हममें से सब या कम से कम हममें से अधिकांश इस विचार के हैं, निश्चय से इस विचार के समर्थक हैं, कि निर्वाचन केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त प्राधिकारी के नियंत्रण, निदेश तथा देखभाल में होने चाहियें, मेरा मतलब राष्ट्रपति से है और वे निर्वाचन संसद द्वारा अधिनियमित किसी विधि के अधीन होने चाहिये। किन्तु, श्रीमान्, मेरे विचार में इस अनुच्छेद की पुनर्रचना करना आवश्यक है जिससे कि इस अनुच्छेद 289 में रखी गई प्रक्रिया वास्तव में क्रियात्मक और प्रभावी बन जाये जिससे कि राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त निकाय में—मेरा मतलब निर्वाचन आयोग से है—तथा केन्द्र अथवा प्रांतों के अन्य निकायों में संघर्ष न हो, किन्तु वर्तमान रूप में, मेरा ख्याल है कि यदि अनुच्छेद 289 को विद्यमान रूप में रहने दिया गया तो इससे निर्वाचन आयोग तथा विभिन्न विधान मंडलों के अधिष्ठाताओं में संघर्ष उत्पन्न होगा। देखिये, इसमें लिखा है:

> ''संसद और विधान मंडल आदि के समस्त निर्वाचनों के लिये नामावली तैयार कराने का तथा उन समस्त निर्वाचनों के संचालन का तथा निर्वाचनों का अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण।''

अब ये विभिन्न कृत्य हैं जोकि इस निर्वाचन आयोग की सौंपे जायेंगे। किन चीजों का अधीक्षण, निदेशन तथा नियंत्रण, सर्वप्रथम संसद के राज्यों के विधान मंडलों के निर्वाचनों के लिये निर्वाचन नामावलियां तैयार करने का, और राष्ट्रपति के अथवा राष्ट्रपति के पदों के लिये सारे निर्वाचनों का। इन निर्वाचनों की निर्वाचन-नामावलियां इस निर्वाचन आयोग की देखभाल, निर्देश और नियंत्रण में होगी। दूसरे, इसका कृत्य इन निर्वाचनों का संचालन

करना है। निर्वाचन आयोग को ये ही दो कृत्य सौंपे जायेंगे। अब हम देखें कि राष्ट्रपति का निर्वाचन कैसे होगा, उपराष्ट्रपति का निर्वाचन कैसे होगा, राज्य परिषद् के सदस्यों का निर्वाचन कैसे होगा और अन्ततः राज्यों की विधान परिषदों के सदस्यों का निर्वाचन कैसे होगा। अनुच्छेद 43 के अधीन, जोकि हम पहले ही पारित कर चुके है। राष्ट्रपति संसद वे दोनों सदनों द्वारा और विभिन्न राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुना जायेगा। अब प्रश्न यह है कि इन सब सदस्यों की निर्वाचन नामावलियां क्या होंगी? क्या डा. अम्बेडकर की यह इच्छा है कि आयोग इस प्रश्न का विनिश्चय करेगा कि वे कौन से निर्वाचक होंगे जो इन निर्वाचन संस्थाओं में शामिल होंगे? अब निर्वाचक लोग वे सदस्य होंगे जो पहले ही समुचित रूप से लोकसभा, राज्य-परिषद् और विभिन्न विधान सभाओं के लिये चुने जा चुके होंगे। वे तो पहले ही समुचित रूप से निर्वाचित सदस्य होंगे। अतः केवल इन्हीं सदस्यों की निर्वाचन नामावली तैयार करने का प्रश्न तो उठता ही नहीं है। मेरे विचार में यह बात तो शीघ्र ही मान ली जायेगी कि निर्वाचन आयोग को यह विनिश्चय करने का अधिकार नहीं होना चाहिये कि उन सदस्यों में से कौन अनर्ह है। हां, एक बार समुचित रूप से निर्वाचित होने पर भी सदस्य सदस्यता पर रहने के लिये निर्योग्य हो सकता है; और जहां तक राज्यों की विधान सभा का संबंध है, उस दिन हमने अनुच्छेद 167-क अधिनियमित किया है जिसमें उपबन्धित है कि यदि ऐसा कोई प्रश्न उठे तो उसका विनिश्चय राज्यपाल ही करेगा और उसका आदेश या विनिश्चय अन्तिम होगा। अब राज्यपाल का विनिश्चय या आदेश अंतिम होते हुए, निर्वाचन आयोग का यह निश्चय करने के मामले में क्या कृत्य रह जाता है कि कौन से सदस्य राष्ट्रपति के निर्वाचन में भाग लेने के अधिकारी थे और कौन अधिकारी नहीं थे? यहां तक निर्वाचन नामावलियों के तैयार करने का संबंध है, निर्वाचन आयोग को किसी कृत्य का निर्वहन नहीं करना होगा। दूसरा काम है निर्वाचन का संचालन करने का। अब यह प्रश्न उठता है कि लोकसभा के सदस्यों को कहा जायेगा कि वे राष्ट्रपति को चुनें और इसी प्रकार राज्य परिषद् के सदस्यों से कहा जायेगा और इसी प्रकार विभिन्न राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों से कहा जायेगा। वे व्यक्ति विभिन्न विधान मंडलों के सदस्य होने के नाते अपने मत देंगे, अतः उन्हें यह मतदान का कृत्य सम्बद्ध विधान मंडलों के अधिष्ठाताओं की देखरेख, निदेश और नियंत्रण में करना चाहिये। क्या यह इच्छा है कि उन विधि विधान मंडलों के अधिष्ठाताओं को इन निर्वाचनों का संचालन करने के सामान्य और जन्मजात अधिकार से भी वंचित कर दिया जाये? मेरे विचार में ऐसा नहीं है। अतः, जहां तक राष्ट्रपति के निर्वाचन का संबंध है, निर्वाचन नामावली तैयार करने के मामले में और निर्वाचन का संचालन करने के मामले में, दोनों में निर्वाचन आयोग के करने के लिये कोई काम नहीं है, यदि है, तो स्पष्टतः उसका विभिन्न विधान मंडलों के अधिष्ठाताओं से संघर्ष हो जायेगा। अब उपराष्ट्रपति के निर्वाचन के प्रश्न को लीजिये। वहां तो मामला और भी उलझा हुआ है। उपराष्ट्रपति के निर्वाचन के विषय में हमें यह बताया गया था—इसका श्रेय मेरे माननीय मित्र श्री त्यागी को मिलना चाहिये—उन्होंने सदन के बाहर यह बताया था कि अनुच्छेद 55 में लिखा है ''कि उपराष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों के सदस्यों द्वारा व्यवस्थानुसार संयुक्त अधिवेशन में निर्वाचित होगा, आदि।'' यहां भी हम देखते हैं कि उपराष्ट्रपति के निर्वाचन के लिये कौन मत देगा, यह प्रश्न तो अनुचछेद 55 द्वारा सुनिश्चित

[श्री जसपतराय कपूर]

कर दिया गया है और इस विषय में निर्वाचन आयोग को कुछ नहीं करना पड़ेगा। निर्वाचन के संचालन का तरीका भी अनुच्छेद 55 में रख दिया गया है। सारे सदस्य संयुक्त अधिवेशन में समवेत होंगे जिसका सभापतित्व, जैसा कि उपबन्ध किया गया है, लोकसभा का अध्यक्ष करेगा। उपराष्ट्रपति के निर्वाचन के संबंध में निर्वाचक आयोग कहां आता है? तीसरा प्रश्न राज्य-परिषद् के सदस्यों के निर्वाचन का है। अनुच्छेद 67 के अनुसार वे विभिन्न राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा निर्वाचित होंगे। यहां भी यह सुविख्यात है कि निर्वाचन में कौन लोग भाग लेंगे; निर्वाचन नामावली के तैयार करने का कोई प्रश्न नहीं है। फिर निर्वाचनों का संचालन और मतदान, वह काम विगत के समान विविध विधान मंडलों के अध्यक्षों के निदेशन और नियंत्रण में होगा; और निर्वाचन आयोग द्वारा हस्तक्षेप का परिणाम अध्यक्षों से संघर्ष होगा। वही आपत्ति राज्यो की विधान-परिषदों के सदस्यों के निर्वाचन के विषय में उठेगी, जो कि विभिन्न राज्यों की विधान सभाओं के सदस्यों द्वारा चुने जायेंगे। अत: अनुच्छेद 289 में अन्तर्ग्रस्त भावना सराहनीय है, और हमें केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त केन्द्रीय प्राधिकारी की देखरेख और नियंत्रण में निर्वाचनों के संचालन का उपबन्ध करना चाहिये, पर हमें अनुच्छेद की ऐसी रचना करनी चाहिये कि जिससे निर्वाचन आयोगों और विभिन्न राज्यों के अधिष्ठाताओं के बीच संघर्ष की कोई संभावना ही न रहे, और ऐसी बातों को हटा देना चाहिये जिससे कि ऐसे संघर्ष हो सके। हमें अनुच्छेद 55 पर भी ध्यान देना चाहिये जिसमें हमने उपराष्ट्रपति के निर्वाचन का उपबन्ध रखा है। अत: मेरा निवेदन है कि इस खंड की पुनर्रचना होनी चाहिये जिससे कि यह लोकसभा और विधान सभाओं के प्रत्यक्ष निर्वाचनों पर ही लागू हो। आज हम इस सिद्धांत को निश्चय से स्वीकार कर सकते हैं कि समस्त निर्वाचन केन्द्रीय प्राधिकारी के निदेश, देखरेश तथा नियंत्रण में होंगे, पर हां यह सब कुछ ऐसे परिवर्तनों के अधीन रहते हुए होगा जोकि अनुच्छेद 55 को देखते हुए और मैं जो निवेदन कर चुका हूं उसे देखते हुए स्पष्टत: आवश्यक दिखाई दें। मुझे यही निवेदन करना है और मैंने जिस संशोधन की सूचना दी थी वह भी इन्हीं बातों के विषय में था। यदि मेरी बताई हुई कठिनाइयां तथा आशंकाये किसी ऐसे निर्वाचन से दूर हो सकती हों जो डा. अम्बेडकर अनुच्छेद 289 के विषय में बतायें, तो यह और बात है।

***अध्यक्ष:** मैं बता देता हूं कि इसमें स्पष्टीकरण की कोई आवश्यकता नहीं है। आप यह समझ रहे हैं कि इन सब निर्वाचनों में सदस्यगण संसद में बैठकर मत देंगे। किन्तु वे संसद में बैठे हुए नहीं होंगे; वे उस निर्वाचन-क्षेत्र विशेष के मतदाताओं के रूप में मत देंगे।

***श्री महावीर त्यागी:** विवादों और अध्यक्ष के समक्ष नाम-निर्देशन के प्रपत्रों को भरने के विषय में क्या स्थिति होगी।

***अध्यक्ष:** यह तो निर्वाचन आयोग विनिश्चित करेगा कि इस निर्वाचन के लिये निर्वाचन अधिकारी कौन होगा। सारा तर्क इस धारणा पर आधारित है कि जब विधान मंडलों के सदस्य, जोकि राष्ट्रपति के निर्वाचन में मत देने के अधिकारी हों, बैठेंगे तो वे सभा के सत्ररूप में बैठेंगे। वे ऐसा नहीं करेंगे। वे एक निर्वाचन मंडल के सदस्य होंगे और वे उस नाते मत देंगे।

***श्री महावीर त्यागी:** उपराष्ट्रपति के निर्वाचन में, माननीय सदस्य सदन में नाम प्रस्तावित करेंगे, फिर उसका अनुमोदन होगा और नाम-निर्देशन पत्र भेजे जायेंगे, इत्यादि।

***अध्यक्ष:** आप फिर यही धारणा बना रहे हैं कि वह सदन का सत्र होगा।

***श्री जसपतराय कपूर:** नि:संदेह मैंने जो कुछ निवेदन किया था वह इसी धारणा पर था किन्तु मैं नहीं जानता कि इसका और भी कुछ अर्थ निकल सकता है। हम हर स्थान पर देखते हैं कि सदस्यगण राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तथा राज्य-परिषद् के सदस्यों को वे विधान मंडल के सदस्य होने के नाते निर्वाचित करेंगे, किसी और हैसियत से नहीं। उदाहरण के लिये, अनुच्छेद 55 में लिखा है कि उपराष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों के सदस्यों द्वारा एक मीटिंग (अधिवेशन) में निर्वाचित होगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** शब्द ये है ''संयुक्त अधिवेशन (मीटिंग) में'' 'बैठक (सिटिंग)' में नहीं।

***श्री जसपतराय कपूर:** यह ठीक होगा यदि इस बात को सदन में प्राधिकार से कह दिया जाये, जिससे कि इस अनुच्छेद की भिन्न प्रकार से अर्थ निकालने की संभावना न रहे, क्योंकि अनुचछेद 80 (3) ओर 164 (3) में 'मीटिंग' शब्द का प्रयोग स्पष्टत: विधान मंडल की बैठक (सिटिंग) के आशय से हुआ है, सदस्यों की भीड़ मात्र के अर्थ में नहीं। एक ही शब्द का भिन्न-भिन्न अनुच्छेदों में भिन्न-भिन्न अर्थ नहीं लगाया जा सकता, जब तक कि वहां उसका स्पष्ट उल्लेख न कर दिया जाये। मुझे तो यही निवेदन करना है।

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाब : सिक्ख): श्रीमान्, अनुच्छेद 289, जो बाद में संशोधित हुआ है, सांस्कृतिक, मूलवंशीय तथा भाषा संबंधी अल्पसंख्यकों के संरक्षण के लिये नि:संदेह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपबन्ध है। यह अत्यन्त सराहनीय भावना से बनाया गया है कि यह उनकी प्रांतीय पक्षपातों तथा अधिकारियों की भ्रांतियों से रक्षा करेगा। किन्तु एक बात है जिसकी मुझे आशंका है। यद्यपि मूलवंशीय, सांस्कृतिक तथा भाषा संबंधी अल्पसंख्यकों की प्रांतीय पक्षपातों से रक्षा की गई है, पर यह धारणा बना ली गई है कि केन्द्र में कभी कोई भ्रष्टाचार हो ही नहीं सकता। शायद इस भावना ने हमारे हृदयों में घर कर लिया है। कितने हमारे विद्यमान नेता, जोकि योग्य तथा उत्तरदायी व्यक्ति हैं और जो इस समय सत्तारूढ़ हैं, वे ही सदा रहेंगे अथवा उनके अनुवर्ती व्यक्ति भी इतने ही उत्तरदायी होंगे जितने कि ये हैं। मुझे भय है कि भविष्य में शायद ऐसा न हो और उस समय थोड़े से पक्षपात या असहानुभूति से अल्पसंख्यक महान् जोखिम में पड़ सकते हैं। मैं शक्ति के केन्द्रीयकरण के नि:संदेह विरुद्ध हूं और मैं अनुभव करता हूं कि हम इस संविधान में शक्ति को यहां केन्द्रित करके प्रांतीय सरकारों को जिला मंडलों की तरह बना रहे हैं। किन्तु मैं विद्यमान संशोधन का विरोध नहीं कर रहा हूं क्योंकि हमें यह आश्वासन दे दिया गया है कि यह इन अल्पसंख्यकों की रक्षा करने के लिये बनाया जा रहा है। मैं तो इसका स्वागत करता हूं। किन्तु मुझे इस विषय में एक बात कहनी है और वह यह है कि इस आयोग को बहुत महत्त्वपूर्ण कृत्यों का निर्वहन करना है जिनमें एक काम

[सरदार हुकम सिंह]

निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन है। हां, यह कार्य सब निर्वाचनों की आत्मा होगी। यदि निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन अल्पसंख्यकों के साथ पूरी सहानुभूति के साथ किया जाये, तो इसमें विश्वास फिर पैदा हो सकता है और उन्होंने जो कुछ किया है—मेरा मतलब स्वेच्छा से स्थान-रक्षण छोड़ देने से है—उसके लिये उन्हें पछतावा नहीं होगा। जहां तक बहुसंख्यकों का संबंध है उन्हें किसी बात की चिंता करने की अपेक्षा नहीं है। जहां तक अनुसूचित जातियों का संबंध है वे बिल्कुल सुरक्षित है क्योंकि उन्हें स्थान-रक्षण मिल गया है। जहां तक आंग्ल-भारतीयों का संबंध है, यदि उनको समुचित प्रतिनिधित्व नहीं मिलेगा तो उनको मनोनीत कर दिया जायेगा। किन्तु अन्य अल्पसंख्यकों जैसे मुस्लिमों और सिक्खों के विषय में मैं अनुभव करता हूं कि यदि उन्हें समुचित प्रतिनिधित्व नहीं मिलेगा तो संभव है कि उन्हें बहुसंख्यकों पर भरोसा न रहे। जब निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन करना होगा तब इस मामले में इस आयोग को एक महत्त्वपूर्ण कार्य करना होगा। जैसा कि हमारा उद्देश्य है, यदि आयोग यह उत्तरदायित्व अनुभव करता है और अपने कर्त्तव्य को पूरे उत्तरदायित्व के साथ पूरा करता है तो मुझे विश्वास है कि अल्पसंख्यकों को भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन में जरा सी अनुदारता तथा अव्यवस्था करके आयोग निःसंदेह बहुत गड़बड़ कर सकता है और वे अल्पसंख्यक इतना भी प्राप्त नहीं कर सकेंगे जितना कि उन्हें सामान्यतः अपनी जनसंख्या के अनुसार मिल जाता। अतः इस बात के कहने से मेरा प्रयोजन यह है कि कम से कम आरम्भ में सरकार को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि यह आयोग ऐसे बनाया जाये कि उसमें प्रत्येक हित को प्रतिनिधित्व मिले और यह काम सरकार आसानी से कर सकती है। इससे वे अल्पसंख्यकों में सब विश्वास पुनः पैदा कर सकेंगे। इससे वह उद्देश्य बहुत हद तक सिद्ध हो जायेगा जो हमारे सामने है, कि हमारा राष्ट्र एक हो, सब व्यक्ति मिल जायें। यदि सरकार यह आश्वासन दे दे कि वह मेरी इस प्रार्थना पर सहानुभूति के साथ विचार करेगी, तो मेरा उद्देश्य पूरा हो जायेगा और अल्पसंख्यक अपने भविष्य के विषय में आशंकित न होंगे। इन शब्दों के साथ मैं इस अनुच्छेद का, जिस रूप में कि यह सदन में अब प्रस्तावित हुआ है, स्वागत करता हूं।

***श्रीमती एनी मैस्करीन** (ट्रावनकोर राज्य): अध्यक्ष महोदय, दो दिन पूर्व डा. अम्बेडकर का स्पष्टीकरण सुनकर मैंने सोचा था कि मैं इसे स्वीकार कर सकती हूं। पर आज प्रातः श्री मुंशी की वक्तृता सुनने के पश्चात् मुझे इस विषय पर पुनः बोलने और अपनी पुरानी बात को पुनः पेश करने की उत्तेजना हुई हैं श्रीमान्, मेरा यह विश्वास है कि प्रांत के लोगों को अपने प्रतिनिधि आप ही चुनने का अधिकार है और इस बात में वे संसार की किसी शक्ति के नियंत्रण, देखभाल, तथा निदेशन के अधीन नहीं होने चाहिये। मैं उसे लोकतंत्र समझती हूं। यदि केन्द्र का यह ख्याल हो कि इस बात की आवश्यकता है कि वे निर्वाचनों की देखभाल और नियंत्रण करें, तो प्रांतीय विधान मंडल में बैठी हुई मैं उनमें उतने ही दोष देख सकती हूं जितने कि वे हममें देखते हैं। इस अनुच्छेद से यह प्रतीत होता है कि जैसे केन्द्र अपने आप को न्याय का संरक्षक समझता हो। न्याय किसी की संपत्ति नहीं है, केवल उनकी है जोकि सत्य के प्रेमी हैं। श्री मुंशी ने आज प्रातः कहा कि अनुच्छेद 289 का उद्देश्य प्रांतों की जनता के अधिकारों की रक्षा करना है क्योंकि इसमें ही सहूलियत है और यही वास्तविकता है। क्या मैं उन्हें स्मरण कराऊं कि प्राचीनकालों

में राष्ट्रों की सहूलियतें और वास्तविकतायें क्या थीं—रोम की संसद और इंग्लिस्तान की लम्बी संसद की सहूलियतें क्या थी? क्रोमवेल समझता था कि एक सदन के विधान मंडल द्वारा प्रशासन चलाने में ही सहूलियत थी। नैपोलियन के वीरों का भी यही ख्याल था कि एक सदन के विधान मंडल द्वारा प्रशासन चलाने में सहूलियत थी। किन्तु समय ने उन सहूलियतों के प्रभाव को सिद्ध कर दिया है। आज जो वास्तविकता और सहूलियत है वे कल वैसी न रहेंगी। हम तो यहां लोकतंत्र के सिद्धांत–मोटे-मोटे सिद्धांत–रख रहे हैं, जो केवल आगामी निर्वाचनों के ही लिये नहीं होंगे, वरन् भविष्य के लिये होंगे, पीढ़ियों के लिये, राष्ट्र के लिये होंगे। अतः यहां सहूलियत के सिद्धांतों के स्थान पर नैतिकता के सिद्धांतों पर विचार करना अधिक ठीक होगा। मेरा तो विश्वास है कि राजनीति भी केवल नैतिकता ही है। मैं राजनीति को योग, शेष तथा गुणन के हिसाब का सिद्धांत नहीं समझती। यदि इस धारा को स्वीकार कर लिया जायेगा तो हमें यह विश्वास करना होगा कि आगे से प्रांतीय निर्वाचन केन्द्र के स्थायी दासत्व के अन्तर्गत होंगे। इसका यह आशय है, श्रीमान्, कि प्रांतीय जनता की ईमानदारी पर संदेह किया जाता है। मैं सारा अपराध केन्द्र पर मंढना चाहती हूं। श्रीमान्, क्या हमें इस अवसर पर कोई निर्बन्ध लगाने चाहियें, जबकि भारत की जनता अपने मोटे से अधिकार को मांग रही है कि उसे संसार के किसी प्राधिकारी के हस्तक्षेप के बिना अपने प्रतिनिधियों को चुनने का अधिकार हो? यदि लोकतंत्रीय सिद्धांतों को स्वीकार करना है, तो इस अनुच्छेद को संविधान से हटा देना चाहिये।

अब मैं अन्तिम संशोधन पर आती हूं, जिसके द्वारा ऐसी धारा को संसद की वैधता प्रदान की जा रही है जोकि पहले एकतंत्रवाद की धारा समझी जाती थी। श्रीमान्, चाहे संशोधन कुछ भी हो पर उसकी छाया अथवा रंग तो हट नहीं सकता और यह पितृ कुल प्रणाली के प्राचीन रोमन दासत्व के समान अब भी दिखाई देती है। यदि प्रांतों या राज्यों के लोगों का पथ-प्रदर्शन होना है तो अनुभव से ही होने दीजिये। यदि हम गलती करते रहे हैं तो हम कुछ समय अथवा कुछ कालावधि के लिये ही गलती करेंगे। वे कहते हैं कि यह लोकतंत्रात्मक सिद्धांतों से दूर है। मैं पूछती हूं कि राष्ट्र और युगों के अनुभव से दूर हटने की आवश्यकता ही क्या है? क्या आप सिद्ध कर सकते हैं कि हमने लोकतंत्रीय सिद्धांतों में गलती की है? उस हालत में मैं इस खंड को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं। किन्तु बात यह है कि हमने प्रयोग करने का प्रयत्न भी नहीं किया है। हम तो उसकी तैयारी ही कर रहे हैं। यदि प्रयोग के समय हम असफल हो जायें तो संविधान में उपबन्ध है कि समय तथा परिस्थितियों के अनुसार संशोधन किया जा सकता है। किन्तु हमें पहले ही यह धारणा बनाकर कि प्रांतों के लोग सत्य और न्याय के सिद्धांतों पर नहीं चलेंगे और न्यायपूर्ण निर्वाचनों के लोकतंत्रात्मक सिद्धांतों पर नहीं चलेंगे, राष्ट्र की ख्याति को धब्बा नहीं लगाना चाहिये। स्थायी प्रशासन के लिये शक्ति का केन्द्रीयकरण अच्छा है पर यह शक्ति का केन्द्रीयकरण बाद में शनैःशनैः विकास द्वारा होना चाहिये और लोकतंत्र के प्रारंभ से ही नहीं होना चाहिये। लोकतंत्र के प्रारम्भ में ही केन्द्रीयकरण जनतंत्र नहीं वरन् निरंकुशता ही दिखाई देगा। हम ऐसे युग में रह रहे हैं जबकि कई राष्ट्र लोकतंत्रात्मक प्रयोग कर रहे हैं। डा. अम्बेडकर ने 1920 के कनाडा अधिनियम के उदाहरण दिया है पर वे कनाडा से संयुक्त राज्य अमेरीका तक क्यों नहीं गये? वे आस्ट्रेलियन कामनवैल्थ

[श्रीमती एनी मैस्करीन]

पर दृष्टिपात क्यों नहीं करते? यदि कनाडा ने एक उपाय अपनाया है, तो क्या यह आवश्यक है कि भारत भी जिसकी जनसंख्या कनाडा से 25 गुनी है और आकार यूरोप से आधा है, अपने संविधान में उन्हीं सिद्धांतों को रखे, तथा लोकतंत्र के प्रयोग का उसे ही एकमात्र आदर्श माने? यदि इस खंड के बिना संयुक्त राज्य में लोकतंत्र सफल हो सकता है, इंग्लिस्तान में भी वह सफल हो सकता है, तो वह भारत में इसके बिना सफल क्यों नहीं होना चाहिये? खैर, श्रीमान्, मुझे आशा है कि सदन इस अनुच्छेद पर विचार करेगा और लोकतंत्र के सिद्धांतों पर चलेगा, सहूलियत के सिद्धांतों पर नहीं।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, हमारे संविधान के मस्विदे के अनुच्छेद 289 से जोकि निर्वाचनों तथा निर्वाचन संबंधी है, स्वभावत: सदन में काफी दिलचस्पी पैदा हो गई थी, और मुझे विश्वास है कि इससे सदन के बाहर भी इतनी ही दिलचस्पी पैदा हो गई है या हो जायेगी। यदि, अनुच्छेद 289 के मस्विदा-समिति द्वारा तैयार किये मस्विदे और आज जिस रूप में यह सदन के समक्ष पेश हुआ है उस मस्विदे में तुलना की जाये तो बड़े-बड़े अन्तर दिखाई दिये बिना रह नहीं सकते, मुख्य अन्तर यह है कि राज्यों के विधान मंडलों के सारे निर्वाचनों के अधीक्षण, निदेशन तथा नियंत्रण के विषय में इस अनुच्छेद को डा. अम्बेडकर के नये मस्विदे में मूलत: बदल दिया गया है। संविधान के मस्विदे के पृष्ठ 138 पर इस अनुच्छेद के विषय में पृष्ठ के नीचे जो नोट दिया गया है उसमें लिखा है:

> ''समिति का यह अभिप्राय है कि प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित राज्यों के विधान मंडलों के निर्वाचनों का अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण करने वाला निर्वाचन आयोग राज्य के राज्यपाल द्वारा नियुक्त हो।''

स्पष्ट है कि यह मस्विदा-समिति का मौलिक विचार था। किन्तु बाद में उस विचार में कुछ परिवर्तन हो गया और जहां तक राज्य के निर्वाचन आयोग का संबंध है, राज्यपाल को बिल्कुल हटा दिया गया है। मैं समझ नहीं पाता कि राज्यपाल को उस निर्वाचन आयोग विषय में शक्ति क्यों न दी जाये जो कि राज्य विधान मंडल के निर्वाचनों का अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण करेगा, अब जबकि राज्यपाल को राष्ट्रपति नाम-निर्देशित करेगा। यदि माननीय सदस्य अनुच्छेद 193 (1) को देखेंगे तो उन्हें पता लगेगा कि राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में राज्यपाल को कुछ प्राधिकार दिया गया है। सम्बद्ध खंड में लिखा है:

> ''उच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा तथा मुद्रा द्वारा, भारत के मुख्य न्यायाधिपति से तथा राज्य के राज्यपाल से परामर्श करके, नियुक्त करेगा.....।''

मेरी समझ में नहीं आता कि प्रादेशिक निर्वाचन आयुक्त अथवा राज्य के निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति के बारे में राज्य के राज्यपाल का जरा भी हाथ क्यों न हो। डा. अम्बेडकर ने जिस रूप में अनुच्छेद को संशोधित किया है उससे राज्यपाल को सामान का प्रबंध

करने के विषय में ही शक्ति दी गई हैं, जैसे कि उसे कर्मीवृन्द, फर्नीचर और पता नहीं क्या-क्या चीजों का प्रबन्ध करना होगा। जहां तक इन चीजों का सम्बन्ध है राज्य का नरेश या राज्य का राज्यपाल निर्वाचन आयुक्तों की प्रार्थना पर, निर्वाचन आयोग को या प्रादेशिक आयुक्त को ऐसा कर्मीवृन्द देगा जो कि उन कृत्यों के निर्वहन के लिये आवश्यक हो जोकि इस अनुच्छेद के खंड (1) द्वारा निर्वाचन आयोग को दिये गये हैं। मेरे विचार में श्रीमान्, यह चीज इस अनुच्छेद की सारी योजना के ही बिल्कुल विपरीत है। मेरी तुच्छ सम्मति में कोई वैध कारण नहीं है कि राज्यपाल को इस अधिकार से भी वंचित कर दिया जाये कि वह उस राज्य के निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति के विषय में कुछ कह भी न सके और अपनी सम्मति भी न दे सके। संघ का कार्यपालक प्रमुख राष्ट्रपति है और राज्य का कार्यपालक प्रमुख राज्यपाल है। क्या मैं सदन से पूछ सकता हूं कि यदि हम राष्ट्रपति को, जोकि संघ का सांविधानिक प्रधान है, समस्त भारत के लिये निर्वाचन आयुक्तों को नियुक्त करने की ऐसी महान् शक्तियां देना चाहते हैं, तो हम राज्यपाल को उसके राज्य के निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति के मामले में अपनी सम्मति भी देने का अधिकार क्यों नहीं देते? मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि राज्यपालों को इसके सिवाय कोई शक्तियां क्यों न दी जायें कि वह कर्मीवृन्द के, निर्वाचन आयुक्तों को जितने लिपिक चाहिये, जितने अधीक्षक चाहिये और जितने असिस्टेंट चाहिये, वह दें। जहां तक निर्वाचन आयोग का संबंध है, राज्यपाल एक बड़ा बाबू बन गया है। आप उसे और कुछ नहीं बना रहे। मेरा निवेदन है कि यह तो राज्य के राज्यपाल की प्रतिष्ठा के सर्वथा प्रतिकूल है। मैं नहीं समझ पाता कि राज्यपाल को कर्मीवृन्द देने के लिये क्यों कहा जा रहा है जबकि निर्वाचन आयुक्त की नियुक्ति में उसका कोई हाथ नहीं है। जहां तक निर्वाचन आयोग का संबंध है, मुझे राज्यपाल के प्राधिकार को समाप्त करने पर कठोर आपत्ति है। फिर, मेरा वैयक्तिक रूप से यह ख्याल है कि खंड (5) सर्वथा अनावश्यक है। हम संविधान में व्यर्थ विवरण, प्रयोजनहीन और निरर्थक विवरण रखकर उसे भारी बना रहे हैं। नि:संदेह प्रत्येक कार्यालय को आवश्यक कर्मीवृन्द की आवश्यकता होगी। पर इसे संविधान में क्यों रखा जाये? भारतीय संघ के राष्ट्रपति को और राज्यों के राज्यपालों को नि:संदेह अपने कार्यालयों के लिये कर्मीवृन्द की आवश्यकता होगी, पर हमने संविधान में इसकी चर्चा नहीं की है। फिर यह उल्लेख क्यों किया जाये कि केन्द्र में निर्वाचन आयुक्तों या प्रांतों में प्रादेशिक आयुक्तों को आवश्यक कर्मीवृन्द दिया जायेगा। मैं तो यही पूछता हूं। क्या यह बात हमारे संविधान की प्रतिष्ठा के अनुरूप है कि उसमें ऐसी अनावश्यक बातों को रखा जाये, ऐसी तुच्छ बातों को रखा जाये?

अब मैं उस संशोधन को लेता हूं जो डा. अम्बेडकर ने, सदन में कल और आज के वाद-विवाद को सुनने के पश्चात् आज पेश किया है। मैं अनुभव करता हूं कि आज सदन के समक्ष जो संशोधन पेश किया गया है, वह सदन में रखे गये दृष्टिकोणों को आधे दिल से पूरा करने का प्रयत्न है। हम निर्वाचनों और निर्वाचन संबंधी मामलों पर विचार कर रहे हैं। संसद भारतीय संघ में सर्वोच्च निर्वाचित निकाय है, अत: संसद का निर्वाचनों के अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण के मामलों में अधिक हाथ होना चाहिये। इस प्रयोजन को पूरा करने के उद्देश्य से मेरे मित्र प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना ने कल कुछ

[श्री एच.वी. कामत]

संशोधन पेश किये थे।। डा. अम्बेडकर ने आज जो संशोधन पेश किया है उससे इन संशोधनों की, इन दृष्टिकोणों की आधी बात पूरी होती है। वैयक्तिक रूप से मेरा ख्याल है—इस कथन में मैं गलत हो सकता हूं—पर मुझे विश्वास है कि डा. अम्बेडकर स्वयं तो सारी बात को मानना चाहते हैं इस विषय में। मैं कुछ कहने का साहस नहीं कर सकता और मुझे संशोधन पर उसी रूप में विचार करना है जिस रूप में कि वह सदन के समक्ष रखा गया है। डा. अम्बेडकर ने कल जो अनुच्छेद प्रस्तावित किया था उसके खंड (4) में लिखा है कि ''निर्वाचन आयुक्तों और प्रादेशिक आयुक्तों की सेवा की शर्तें और पदावधि ऐसी होगी जैसी कि राष्ट्रपति नियम द्वारा निर्धारित करे।'' आज सदन के समक्ष जो संशोधन पेश किया गया है उसमें लिखा है कि ''संसद द्वारा निर्मित किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए निर्वाचन आयुक्तों और प्रादेशिक आयुक्तों की सेवा की शर्तें और पदावधि ऐसी होंगी जैसी कि राष्ट्रपति नियम द्वारा निर्धारित करे।'' इसमें दो चीजें है, संसद की विधि और राष्ट्रपति का नियम। क्या मैं इस सदन और भविष्य में भारत संघ की संसद के प्रति न्याय के नाते यह पूछ सकता हूं कि हम यह क्यों न रखें कि सेवा की शर्तें और पदावधि ऐसी होंगी जैसी कि संसद विधि द्वारा निर्धारित करे? यह बात साथ में क्यों रखी जाये ''जैसी कि राष्ट्रपति नियम द्वारा निर्धारित करे।'' राष्ट्रपति संघ का कार्यापालक प्रधान है, जबकि संसद सर्वोच्च निर्वाचित निकाय है। फिर इस विषय में नियम बनाने का कार्य राष्ट्रपति पर क्यों छोड़ा जाये?

अगली बात यह है, कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सेवा की शर्तें और पदावधि इतनी सुरक्षित क्यों बना दी गई हैं कि वह लगभग स्थायी ही बन गया है—सिर्फ संसद के दोनों सदनों के दो-तिहाई बहुमतों से ही हटाया जा सकता है। उसे लगभग स्थायी क्यों बना दिया गया है जबकि उसके सहयोगी निर्वाचन आयुक्तों को, इस अनुच्छेद के अनुसार मुख्य निर्वाचन आयुक्त की इच्छा और मर्जी के अनुसार हटाया जा सकता है। श्रीमान्, मैं अनुभव करता हूं कि इस अनुच्छेद को यूं ही रहने दिया जाये तो निर्वाचन आयुक्तों का अधिकांश समय खुशामद ही करने में व्यतीत हो जायेगा, मुख्य निर्वाचन आयुक्त को प्रसन्न करने में ही सारा समय लग जायेगा, क्योंकि यह स्वाभाविक ही है, मानव स्वभाव ही यह है, उन्हें यही चिंता रहेगी कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त बुरी चिट न दे दे। हम इस अनुच्छेद द्वारा यही उपबन्ध करने का प्रयत्न कर रहे हैं। मैं स्वयं जानता हूं कि उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थ को बुरी चिट दे देता है, इसलिये नहीं कि उसका काम खराब है वरन् इसलिये कि वह स्वतंत्र विचारों का है, दृढ़ विचारों का है या अपने स्वामी को खुश नहीं करता। ऐसी बात को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिये, पर मुझे भय है कि इस अनुच्छेद से तो यही हो सकता है।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र** (पश्चिम बंगाल : जनरल): निर्वाचन आयुक्त सदस्यों को कैसे हटा सकता है मैं समझ नहीं सकता।

***श्री एच.वी. कामत:** सदस्यों को नहीं, निर्वाचन आयुक्तों को। आप ठीक तरह सुन नहीं रहे हैं। मेरे ख्याल में मेरे माननीय मित्र को घर जाने की जल्दी है।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र:** मैं आपकी बात सुन रहा हूं, पर ज्यों-ज्यों आप बोलते जाते हैं मैं अधिकाधिक उलझन में पड़ता जाता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** कल डा. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित अनुच्छेद के खंड (4) के दूसरे परन्तुक में लिखा है कि ''परन्तु यह और भी कि किसी अन्य निर्वाचन आयुक्त या प्रादेशिक आयुक्त को मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सिफारिश के बिना पद से हटाया न जायेगा।'' क्या अब यह स्पष्ट है? मैं चाहता हूं कि निर्वाचन आयुक्तों की स्थिति मुख्य निर्वाचन आयुक्त के समान कर दी जाये। हमने उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों से संबद्ध अनुच्छेद को स्वीकार करके उन्हें एक दूसरे के बराबर स्थान दिया है। मुख्य न्यायाधिपति और उसके सहयोगियों में कोई अन्तर नहीं हैं। इसलिये, मैं पूछता हूं श्रीमान्, कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त और निर्वाचन आयुक्तों के बीच यह विभेद क्यों रखा गया है?

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्रः** मुख्य आयुक्त के विषय में यह बात रख दी गई है। वे मुख्य आयुक्त की सिफारिश पर हटाये जायेंगे।

***श्री एच.वी. कामतः** शायद अनुच्छेद की भाषा स्पष्ट नहीं है। हां, यदि इस अनुच्छेद का यह अर्थ है कि मुख्य आयुक्त और उसके सहयोगी निर्वाचन आयुक्त और प्रादेशिक आयुक्त, इन सबको उसी प्रकार से और उन्हीं आधारों पर हटाया जा सकता है जिन पर कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जा सकता है, तो यह बिल्कुल ठीक है। निर्वाचन आयुक्तों और प्रादेशिक आयुक्तों को हटाने का तरीका, उनकी सेवा की शर्तें और पदावधि इतनी नाजुक बना दी गई है कि इन शर्तों के सामने होते हुए कोई योग्य व्यक्ति, सक्षम व्यक्ति और बुद्धिमान व्यक्ति निर्वाचन आयोग में आकर शायद काम न करना चाहे (*बाधा*)। यदि अपेक्षित हो तो मुझे रोकने के लिये अध्यक्ष महोदय हैं। मुझे आशा है कि सदन में केवल एक ही अध्यक्ष है। मैं उनके निर्णय को शिरोधार्य करूंगा, किसी और के को नहीं। अध्यक्ष का आदेश मैं सदा मानूंगा।

फिर, श्रीमान्, एक दो और बातें हैं जिन पर मैं सदन में जोर देना चाहता हूं। मैं अनुभव करता हूं कि जहां तक प्रादेशिक आयुक्तों का संबंध है, अर्थात् किसी राज्य विशेष के आयुक्तों का सम्बन्ध है, मैं पहले ही कह चुका हूं कि राष्ट्रपति को चाहिये कि उस राज्य के निर्वाचन आयुक्तों को नियुक्त करने से पूर्व वह उस राज्य के राज्यपाल से परामर्श करे। स्थिति ऐसी है कि हम संविधान में प्रांतीय स्वायत्तता को काफी हद तक कम कर रहे हैं, पर निःसंदेह इसमें कोई हानि नहीं है यदि किसी राज्य के लिये निर्वाचन आयुक्तों को नियुक्त करते समय उस राज्य के राज्यपाल से परामर्श कर लिया जाये। आखिर अब राज्यपाल निर्वाचित व्यक्ति नहीं होगा। वह राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत होगा; वह राष्ट्रपति का मनोनीत व्यक्ति होगा तथा वह लगभग उसीका बनाया हुआ होगा। राष्ट्रपति को राज्य के राज्यपाल में पूरा विश्वास होगा; राज्यपाल निर्वाचित बिल्कुल नहीं होगा, वरन् वह मनोनीत राज्यपाल होगा। यदि राष्ट्रपति अपने मनोनीत व्यक्ति पर भी विश्वास नहीं कर सकता तो पता नहीं वह और किस पर विश्वास करेगा। अतः मेरा अनुमान है कि इस विषय में कुछ समुचित सा परिवर्तन कर दिया जायेगा जिससे कि राष्ट्रपति राज्यपाल से परामर्श करेगा, विशेषतः यह देखते हुए कि राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के विषय में, हमने व्यवस्था की है कि राष्ट्रपति राज्य के राज्यपाल से परामर्श करेगा। मैं

[श्री एच.वी. कामत]

नहीं समझ पाता कि राज्यपाल को प्रादेशिक आयुक्त की नियुक्ति के विषय में भी ऐसी ही शक्ति क्यों न दी जाये।

और, जहां तक प्रादेशिक आयुक्तों को हटाने का संबंध है, इस काम को इतना सरल सौम्य नहीं रहने देना चाहिये जैसा कि इस अनुच्छेद में रखा गया है। मैं अनुभव करता हूं कि पदावधि तथा सेवा की अधिक सुरक्षापूर्ण शर्तें होनी चाहिये। यदि प्रादेशिक आयुक्तों के हटाने में संसद का कोई हाथ नहीं हो सकता—केन्द्र की संसद और राज्य के विधान मंडल का हाथ नहीं हो सकता—तो कम से कम मैं यह अनुभव करता हूं कि वे समस्त निर्वाचन आयोग द्वारा हटाये जायें और केवल मुख्य निर्वाचन आयुक्त द्वारा ही न हटाये जायें और समस्त निर्वाचन आयोग में मुख्य निर्वाचन आयुक्त और उसके सहयोगी होंगे। एकल व्यक्ति नाटक तो समाप्त होना ही चाहिये। इस समय तो एकल-व्यक्ति-नाटक ही है। अब हम एक संशोधन स्वीकार करने जा रहे हैं जिसका आशय है 'संसद द्वारा निर्मित विधि के अधीन रहते हुए', किन्तु जहां तक हटाने का संबंध है, अनुच्छेद के अनुसार वह एकल व्यक्ति नाटक ही होगा—चाहे निर्वाचन आयुक्तों को हटाना हो चाहे प्रादेशिक आयुक्तों को हटाना हो। ऐसा नहीं होना चाहिये। हटाना अधिक कठिन बना देना चाहिये अन्यथा मैं सदन को चेतावनी देता हूं कि सेवा की शर्तें इतनी असुरक्षित हैं कि सिद्ध योग्यता, क्षमता अथवा लियाकत का कोई व्यक्ति निर्वाचन आयोग पर काम करने नहीं आयेगा।

फिर, श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना ने एक बात कही है और वह यह है कि प्रादेशिक आयुक्तों को राष्ट्रपति, निर्वाचन आयोग से परामर्श करके नहीं, वरन् उसकी सहमति से नियुक्त करे। मेरे विचार में यह बात ठीक है कि राष्ट्रपति को ही अन्तिम अधिकार हो, किन्तु वह मुख्य आयुक्त की राय पर चले जिसकी सहमति से वह अपने सहयोगियों को नियुक्त करे। आखिर, जब राष्ट्रपति मुख्य आयुक्त को नियुक्त कर चुके, तब मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि राष्ट्रपति को ऐसे योग्य व्यक्ति क्यों न मिलें, जिनके विषय में दोनों सहमत हों। नि:संदेह भारत बहुत वृहद् देश है और वह भविष्य के प्रत्येक पद के लायक व्यक्तियों को पैदा कर सकता है; और मुझे विश्वास है कि इस निर्वाचन आयुक्त के पद के लिये नि:संदेह ऐसे व्यक्ति उपलब्ध होंगे, जिनके विषय में राष्ट्रपति और निर्वाचन आयोग सहमत हो, दोनों एक दूसरे की सहमति से प्रादेशिक आयुक्तों को नियुक्त कर सकते हैं। ये ही कमियां और भूलें इस अनुच्छेद में है जोकि माननीय डा. अम्बेडकर ने सदन के समक्ष पेश किया है। मुझे इस अनुच्छेद की सफलता के विषय में बहुत संदेह है। मुझे संदेह है कि यह किस तरह सफल होगा, जब तक कि इसमें कुछ और समुचित परिवर्तन न कर दिये जायें। जब तक कि इसमें ऐसा संशोधन न कर दिया जाये, मुझे विश्वास है कि केन्द्र में और राज्यों में निर्वाचन आयोग ऐसी अच्छी तरह काम नहीं करेगा जैसा कि हम चाहते हैं वह करे, और मैं कह सकता हूं कि सदन की एकमत से यही इच्छा है कि, अब जबकि निर्वाचन सन्निकट है, तब पहला सामान्य निर्वाचन योग्यता से, निष्पक्षता से तथा कुशलता से कराया जाये। इस विषय में दो मत नहीं हो सकते। पर मैं अनुभव करता हूं कि वह उद्देश्य इस अनुच्छेद से पूरा नहीं हो सकता।

मैं तो इस संभावना की कल्पना भी नहीं करना चाहता। मैं चाहता हूं कि राज्यों और केन्द्र में निर्वाचनों का संचालन करने के लिये अधिक योग्य, निष्पक्ष तथा कार्यकुशल निर्वाचन आयुक्तों को रखने के लिये समुचित उपाय किया जाये। मुझे भय है कि डा. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित इस अनुच्छेद से यह प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। मुझे आशा है कि डा. अम्बेडकर और मस्विदा-समिति के विवेकशील व्यक्ति इस मामले पर विचार करेंगे, यदि अभी नहीं तो शायद बाद में कभी, और इस अनुच्छेद में समुचित संशोधन करने का प्रयत्न करेंगे। मुझे विश्वास है कि सदन इस मामले पर अधिक ध्यान से विचार करेगा, क्योंकि यह यूं ही हंसी में उड़ाने का मामला नहीं है। उन्हें किसी दिन शायद रोना पड़ सकता है। यदि हमें घर जाने की जल्दी है तो मेरे विचार में इस अनुच्छेद को स्थगित कर दिया जाये। यह हंसी की बात नहीं है और यदि सदस्य हंसना चाहते हैं तो खुश हो लें। श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि मेरे कथनानुसार अनुच्छेद में उपयुक्त संशोधन कर दिये जायेंगे।

***कुछ माननीय सदस्य:** प्रश्न पर अब मत लिये जायें।

***अध्यक्ष:** समाप्ति का प्रस्ताव पेश है। प्रश्न यह है:

''कि प्रश्न पर अब मत लिये जायें।''

*प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।*

***अध्यक्ष:** पहले मैं उस संशोधन पर मत लेता हूं जो डा. अम्बेडकर ने अन्त में पेश किया था।

प्रश्न यह है:

''कि प्रस्तावित अनुचछेद 289 में सूची 1 के संशोधन संख्या 99 में–

(1) खंड (1) में, 'to be appointed by the President' ये अन्त के शब्द हटा दिये जायें।

(2) खंड (2) के स्थान पर निम्न खंड रख दिये जायें:

'(2) निर्वाचन आयोग मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा, यदि कोई हो तो, अन्य उतने निर्वाचन आयुक्तों से, जितने कि राष्ट्रपति समय-समय पर नियत करे, मिल कर बनेंगे तथा मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति, संसद द्वारा उस लिये बनाई हुई किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, राष्ट्रपति द्वारा की जायेगी।

(2क) जब कोई अन्य निर्वाचन आयुक्त इस प्रकार नियुक्त किया गया हो तब मुख्य निर्वाचन आयुक्त निर्वाचन आयोग के सभापति के रूप में कार्य करेगा।'

(3) खंड (4) में The conditions of service' इन शब्दों से पूर्व 'subject to the provisions of any law made by Parliament' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।'

*संशोधन स्वीकृत हो गया।*

***अध्यक्ष:** मैं प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन पर मत लूंगा। मेरे विचार में नये प्रबंध के कारण कुछ परिवर्तन हो जायेगा।

प्रश्न यह है:

''कि खंड (1) के अन्त में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'Subject to confirmation by two-thirds majority in a joint session of both the Houses of Parliament.' ''

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि खंड (2) में 'appoint' शब्द के पश्चात् निम्न शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें:

'Subject to confirmation by two-thirds majority in a joint session of both the Houses of Parliament.' ''

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि खंड (3) में, 'after consultation with' इन शब्दों के स्थान पर 'in concurrence with' ये शब्द रख दिये जायें।''

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि खंड (4) में 'President may by rule determine' इन शब्दों के स्थान पर 'Parliament may by law determine' ये शब्द रख दिये जायें।

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि खंड (4) के परन्तुक (1) में, 'Chief Election Commissioner' इन शब्दों के स्थान पर 'Election Commissioners' ये शब्द दोनों स्थानों पर, रख दिये जायें।''

*प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।*

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि खंड (4) के परन्तुक (2) में 'any other Election Commissioner or' इन शब्दों को हटा दिया जाये।''

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 289 के स्थान पर, निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

289. *निर्वाचनों का अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण निर्वाचन आयोग में निहित होंगे*— (1) इस संविधान के अधीन संसद और प्रत्येक राज्य के विधान-मंडल के लिये निर्वाचन के लिये नामावली तैयार कराने का तथा उन समस्त निर्वाचनों के संचालन का तथा राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पदों के निर्वाचनों का अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण, जिसके अन्तर्गत संसद के तथा राज्यों के विधानमंडलों के निर्वाचनों के उदभूत या संसक्त सन्देहों और विवादों के निर्णय के लिये निर्वाचन-न्यायाधिकरण की नियुक्ति भी है, एक आयोग में निहित होगा (जो इस संविधान में '''निर्वाचन आयोग'' के नाम से निर्दिष्ट है।)

(2) निर्वाचन आयोग मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा, यदि कोई हो तो, अन्य उतने निर्वाचन आयुक्तों से, जितने कि राष्ट्रपति समय-समय पर नियत करे, मिल कर बनेंगे तथा मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति, संसद द्वारा उस लिये बनाई हुई किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, राष्ट्रपति द्वारा की जायेगी।

(2क) जब कोई अन्य निर्वाचन आयुक्त इस प्रकार नियुक्त किया गया हो तब मुख्य निर्वाचन आयुक्त निर्वाचन आयोग के सभापति के रूप में कार्य करेगा।

(3) लोक-सभा, तथा प्रत्येक राज्य की विधान-सभा के प्रत्येक साधारण निर्वाचन से पूर्व, तथा विधान-परिषद् वाले प्रत्येक राज्य की विधान-परिषद् के लिये पहले साधारण निर्वाचन तथा तत्पश्चात् प्रत्येक द्विवार्षिक निर्वाचन से पूर्व राष्ट्रपति निर्वाचन-आयोग से परामर्श करके खंड (1) द्वारा निर्वाचन-आयोग को दिए गये कृत्यों के पालन में आयोग की सहायता के लिये ऐसे प्रादेशिक आयुक्त भी नियुक्त कर सकेगा जैसे वह आवश्यक समझे।

(4) संसद द्वारा निर्मित किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए निर्वाचन आयुक्तों और प्रादेशिक आयुक्तों की सेवा की शर्तें और पदावधि ऐसी होंगी जैसी कि राष्ट्रपति नियम द्वारा निर्धारित करे:

परन्तु मुख्य निर्वाचन-आयुक्त अपने पद से वैसे कारणों और वैसी रीति के बिना न हटाया जायेगा जैसे कारणों और रीति से उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश हटाया जा सकता है तथा मुख्य निर्वाचन-आयुक्त की अपनी नियुक्ति के पश्चात् उसकी सेवा की शर्तों में उसको अलाभकारी कोई परितर्वन न किया जायेगा:

परन्तु यह और भी कि किसी अन्य निर्वाचन-आयुक्त या प्रादेशिक आयुक्त को मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सिफारिश के बिना पद से हटाया न जायेगा।

[अध्यक्ष]

(5) जब निर्वाचन आयोग ऐसी प्रार्थना करे तब, राष्ट्रपति या किसी राज्य का राज्यपाल या राजप्रमुख निर्वाचन आयोग या प्रादेशिक आयुक्त को ऐसे कर्मचारी वृन्द प्राप्य करायेगा जैसे कि खंड (1) द्वारा निर्वाचन-आयोग को दिये गये कृत्यों के निर्वहन के लिये आवश्यक हो।''

*संशोधन स्वीकृत हो गया।*

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 289 संविधान का अंग बने।''

*प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।*

*संशोधित रूप में अनुच्छेद 289 संविधान में जोड़ दिया गया।*

---

## सदन का स्थगन

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा:** अध्यक्ष महोदय, इस सदन के प्रक्रिया के नियमों के नियम 19 में एक उपबन्ध है कि अध्यक्ष सदन को तीन दिन से अधिक समय के लिये स्थगित नहीं कर सकता, जब तक कि सदन उसको इसका प्राधिकार न दे। अत: मैं यह औपचारिक प्रस्ताव पेश करता हूं:

''यह संकल्प किया जाता है कि सदन जुलाई 1949 की उस तारीख तक के लिये स्थगित रहे जो कि अध्यक्ष नियत करे।''

कोई तारीख निश्चित नहीं की गई है; उसे अध्यक्ष महोदय नियत करेंगे।

***एक माननीय सदस्य:** महीना क्यों रखा जाये?

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा:** मास निश्चित है; अध्यक्ष तारीख निश्चित करेंगे।

***माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त** (मध्यप्रान्त तथा बरार : जनरल): इसका यह अर्थ है कि मास के विषय में अध्यक्ष कुछ नहीं कर सकेंगे।

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा:** प्रस्ताव केवल यही है कि सदन उस तारीख तक के लिये स्थगित रहे जोकि अध्यक्ष नियत करें। वे मास को नहीं बदल सकते; वे तारीख नियत कर सकते हैं।

***अध्यक्ष:** इस प्रस्ताव पर सदन का मत लेने से पहले मैं चाहता हूं कि जैसा मेरा विचार है इस स्थिति को तथा कार्यक्रम को स्पष्ट कर दूं। मेरा अपना विचार यह है कि हमें दूसरे वाचन को 15 अगस्त तक समाप्त कर देना चाहिये। तत्पश्चात् हमें कुछ समय के लिये स्थगित होना पड़ेगा जिससे कि मस्विदा-समिति तीसरे वाचन के लिये संविधान को अन्तिम रूप में तैयार कर सके। उसमें कुछ सप्ताह लग सकते हैं। अत: हमें सितम्बर

में किसी समय समवेत होना पड़ेगा। उस पर यह शर्त होनी चाहिये कि हम तीसरे वाचन को 2 अक्टूबर तक पारित कर सकें। यह मेरी इच्छा है। यदि सदन इस अनुमानित कार्यक्रम पर सामान्यतः सहमत हो, तो मैं मस्विदा-समिति से परामर्श करके, और शायद सरकार के सदस्यों से भी परामर्श करके, जिनका इससे मुख्यतः संबंध है, तारीख निश्चित कर दूंगा।

***श्री महावीर त्यागीः** क्या आप हमें कुछ बता सकते हैं कि आप हमें जुलाई में कितने समय तक बैठने के लिये कह सकते हैं?

***अध्यक्षः** मैं आपको बता सकता हूं। सभा 15 जुलाई से पहले समवेत नहीं हो सकती, क्योंकि, जैसा कि मैंने उस दिन कहा था, यह स्थान इसलिये आवश्यक हो गया है कि कई ऐसे उपबन्ध हैं जिन पर प्रांतीय मंत्रियों से परामर्श करके विचार करना है और इस बातचीत के समय वित्त मंत्री को भी उपस्थित होना है। वित्त मंत्री पौंड पावना विषयक वार्ता के संबंध में इंग्लिस्तान जा रहे हैं, और वे जुलाई के आरम्भ में कभी वापस आयेंगे। हम यह आशा नहीं कर सकते कि प्रांतीय मंत्रियों का यह सम्मेलन 15 जुलाई से पहले हो सकेगा। अतः सदन 15 जुलाई से पूर्व समवेत नहीं हो सकता। प्रश्न यह है कि 15 जुलाई के पश्चात् किस तारीख को हम समवेत हो सकेंगे। जैसा कि मैंने कहा है, मैं मस्विदा-समिति और सरकार से परामर्श करके वह तारीख निश्चित कर दूंगा।

***श्री महावीर त्यागीः** मैं जानना चाहता हूं कि हमें कितने समय तक बैठना पड़ेगा।

***अध्यक्षः** जैसा कि मैं कह चुका हूं, जिस दिन हम आरम्भ करेंगें उस दिन से लेकर 15 अगस्त तक, यही मेरा ख्याल है।

***श्री महावीर त्यागीः** 15 तो संभावित तारीख है जिस दिन आप शायद सत्र बुलायेंगे। मैं तो यह जानना चाहता हूं कि वह सत्र कितने दिन चलेगा।

***अध्यक्षः** मैं इस प्रश्न का उत्तर दे चुका हूं। मैं कह चुका हूं कि जिस दिन सत्र आरम्भ होगा उस दिन से 15 अगस्त तक चलेगा, यदि मेरा अनुमानित कार्यक्रम सफल हुआ।

***माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्तः** क्या मैं आपको याद दिला सकता हूं, श्रीमान्, कि यह कहना हमारे लिये कठिन होगा कि हम किस तारीख विशेष को समाप्त कर सकेंगे। यह कार्य पर निर्भर है और इस बात पर निर्भर है कि हम कितना समय लेते हैं।

***अध्यक्षः** जैसा कि मैंने कहा है, यह मेरा काम चलाऊ सुझाव ही है। यह अच्छी तारीख है और इसलिये मैं उस तारीख तक इसे समाप्त करना चाहता हूं। यदि सदस्य अधिक समय लगाना चाहें तो हां वे ऐसा कर सकते हैं।

***श्री आर.के. सिधवाः** मेरा यह कहना है, हमने कई खंड स्थगित कर दिये हैं और जब तक हम जरा जल्दी यानी 20 जुलाई से पहले समवेत न हों, तो हम स्थगित की हुई बातों को 15 अगस्त 1949 तक समाप्त नहीं कर सकेंगे।

***अध्यक्षः** मैं इस बात का ध्यान रखूंगा।

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हाः** श्रीमान्, अब हमें उठ जाना चाहिये।

***अध्यक्षः** क्या मैं यह समझ लूं कि सदन श्री सिंह द्वारा प्रस्तावित प्रस्ताव को स्वीकार करता है?

***माननीय सदस्यगणः** हां।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''यह संकल्प किया जाता है कि सदन जुलाई 1949 की उस तारीख तक के लिये स्थगित रहे जोकि अध्यक्ष नियत करे।''

*प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।*

*तत्पश्चात् सभा जुलाई 1949 की उस तारीख तक के लिये स्थगित हो गई जोकि अध्यक्ष नियत करे।*

---